R.N.I. No. 2321/57
ओ३म्
रजि. सं. MTR नं. 04/2016-18
अप्रैल 2017
अंक 3

तपोभूमि

मासिक

पूज्यपाद आचार्य प्रेमभिक्षु जी
(आदि संस्थापक - सम्पादक)
25 अप्रैल - पुण्यतिथि

सम्पादकीय

शान्ति की खोज

आजकल सारा वातावरण अशान्ति की आग की चपेट में है प्राणिमात्र त्राहि–त्राहि कर रहा है। शान्ति की स्थापना के लिए सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक संगठन भरपूर कोशिश कर रहे हैं पर सारे प्रयास व्यर्थ सिद्ध हो रहे हैं। प्रयास सफल न होने का कारण वैदिक ज्ञान का सर्वथा अभाव है। जब तक वेदालोक में हमारे शान्ति स्थापना के प्रयास नहीं होते तब तक यह कदापि सम्भव नहीं है कि संसार में शान्ति स्थापित हो सके। क्योंकि पत्ते–पत्ते को सींचने से वृक्ष कभी हरा भरा नहीं रह सकता जब तक हम मूल को नहीं सींचेंगे। आजकल सर्वत्र पत्ते–पत्ते पर सिंचाई चल रही है और शान्ति का वृक्ष प्रचण्ड अशान्ति के अभाव से झुलस रहा है। क्या हम देखते नहीं हैं कि व्यक्ति को स्वस्थ रखने के लिए अस्पतालों का जाल बिछा है पर हर व्यक्ति रोगों से पीड़ित है। शिक्षा के नाम पर विद्या मन्दिरों को जाल बिछा दिया गया है पर मूर्खता अपनी चरमावस्था पर है। सुरक्षा के नाम पर गली–गली पुलिस चौकियां स्थापित कर दी गई हैं पर चोरी, डकैती, बदमाशी की बाढ़ आ गयी है। व्यक्ति को धार्मिक बनाने के लिए मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारों की बाढ़ आ गयी है। धार्मिक गुरुओं के टोल के टोल घूम रहे हैं पर संसार की दशा देखने से साफ ज्ञात होता है कि धार्मिकता केवल इन्हीं मठ मन्दिर, गुरुद्वारों, गिरिजाघरों, मस्जिदों के अन्दर भी सुरक्षित नहीं रह पा रही है। राजनैतिक लोगों में नैतिकता का नाम भी नहीं है। धार्मिक दीखने वाले लोगों में झांककर देखो तो धार्मिकता का लेश भी नहीं पाता है। ऐसी स्थिति में शान्ति स्थापना का स्वप्न मात्र मृग मरीचिका के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। मेरा दृढ़ मत है कि जब तक हम ईश्वर प्रदत्त ज्ञान वेद के पथ को नहीं अपनाते तब तक शान्ति स्थापना की बात करना भी बेमानी है।

वैदिक कर्म काण्ड करने से पूर्व ही शान्ति स्थापना के सूत्रों को बताने के लिए शान्ति पाठ का विधान ऋषि–महर्षियों ने किया था जिसको हम भूल चुके थे। महर्षि दयानन्द ने उन सब शान्ति स्थापना के मार्गों को पुनः खोला और संस्कार विधि जैसा ग्रन्थ लिखकर ये व्यवस्था दी कि व्यक्ति जब तक संस्कारित नहीं होगा तब तक सामाजिक व राष्ट्रिय जीवन में शान्ति का आना असम्भव है उन्होंने संस्कार विधि में लिखा भी है कि संसार में उत्तम मानव गृहस्थ से ही निकलकर आते हैं यदि गृहस्थ पर ध्यान न दिया गया तो सारे शान्ति स्थापना के प्रयास व्यर्थ ही रहेंगे वे लिखते हैं कि गृहस्थ के बिगाड़ में सबका बिगाड़ है और गृहस्थ के सुधार में सबका सुधार है। संस्कार ही व्यक्ति को महामानव बनाता है और संस्कार ही महादानव बना देता है। अच्छा संस्कार महामानव और कुसंस्कार महादानव बना देगा। कुसंस्कारी होने पर व्यक्ति जीवन में कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य के ज्ञान से हाथ धो बैठता है। ध्यान रहे।

नीच कर्म करने वालों से धर्म नहीं होता है।
सुख से प्राप्त आत्म गौरव को ऐसा नर खोता है।
जितनी उत्तम बात उसे फिर एक नहीं आती है
चिन्ता में हो मग्न रात दिन नींद नहीं आती है।
करते जो अन्याय भाग्य सब उनके छिन जाते हैं।
पके हुए फल की भांति वे नीचे गिर जाते हैं।
इसलिए निज जीवन को सद्‌गुण का कोश बनाओ
मस्त रहो अपने जीवन से मन माना सुख पाओ।

एक बार एक सज्जन जो पहले प्राथमिक पाठशाला में अध्यापक रहे। बाद में साधु बन गये एक सभा में प्रवचन के बाद हमसे मिलने आये और अपना परिचय देते हुए बोले कि अवकाश प्राप्त अध्यापक हूँ पर जीवन

शेष पृष्ठ सं. 35 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–63 | संवत्सर 2074 | अप्रैल 2017 | अंक 3

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादकः
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

अप्रैल 2017

सृष्टि संवत्
1960853118

दयानन्दाब्दः 193

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाषः
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
भाग्यवान गृहस्थी	–महात्मा प्रभुआश्रित महाराज	5–7
दंड	–डॉ0 गोकुलचन्द नारंग	8–11
दुष्टों का दमन	–बाबू सूरजभान वकील	12–13
मित्रता	–श्यामबिहारी मिश्र	14–17
ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र	–पुरुषोत्तमदास	18–21
प्रेम–बन्धन	–कवि केशवानन्द मुकुटधर	22
स्वार्थ और परसंताप	–पं. हनुमानप्रसाद शर्मा	23–26
अरविन्द और आर्यसमाज	–पं. अभयदेव	27–28
देश का काम	–जगन्नाथप्रसाद	29–30
मनोबल द्वारा सर्वरोग	–पं. शिवकुमार शास्त्री	31–33
गुरुकुल विश्व विद्यालय में प्रवेश प्रारम्भ		34

❁❁❁

वार्षिक शुल्क 150/– | पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

लेखकः डॉ० रामनाथ वेदालंकार

वर्षा–गीत

समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु।। –अथर्व0 4.15.1

शब्दार्थः–

(समुत्पतन्तु) उमड़ पड़े (नभस्वतीः) जल–भरी (प्रदिशः) मुख्य दिशाएँ (वातजूतानि) हवाओं से प्रेरित (अभ्राणि) बादल (सं यन्तु) एकत्र हो जायें। (महऋषभस्य) महान् बैल के समान (नदतः) नाद करते हुए (नभस्वतः) जलपूर्ण मेघ की (वाश्रा) शब्द करती हुई (आपः) जलवर्षाएँ (पृथिवीं तर्पयन्तु) भूमि को तृप्त करें।

भावार्थः–

ग्रीष्म के प्रचण्ड ताप से धरती तप रही है। ताल–तलैया, सरोवर सूख गये हैं। वृक्ष–वनस्पति कुम्हला रहे हैं। चरागाहों की हरियाली मटमैली हो रही है। पपीहा पिउ–पिउ कर रहा है। पशु–पक्षी तालों में लोटने को तरस रहे हैं। खेत प्यासे हो रहे हैं। आषाढ़ बीत चला है, किन्तु अन्तरिक्ष में घन–घटा कहीं दृष्टिगोचर नहीं हो रही है। किसान वर्षा की बाट जोह रहे हैं। कोटि–कोटि कण्ठों से पुकार उठती है–बरसो, रे बदरा, बरसो, गगन में छा जाओ। हवाएँ चलें, दिशाएँ बादलों से उमड़ पड़ें। हवाओं से प्रेरित मेघ एकत्र होकर काली घटाएँ बन जाएँ। बिजलियाँ चमकें, घन–घटाएँ गरजें। रिमझिम पानी बरसे, मूसलाधार वर्षा हो। झंझावत मेघ की गड़गड़ाहट को द्विगुणित करे। बड़े डील–डौलवाले, जोर से डकराते हुए वृषभ के समान गर्जना करते हुए बादल की झड़ी के साथ बरसती हुई वर्षाएँ प्यासी भूमि को संतृप्त करें। भूमि वर्षा से स्नात हो जाए, वनस्पतियाँ लहलहा उठें, सरोवरों में मेंढक हर्षविभोर होकर टर्राने लगें। किसान बीजवपन करें, फसल अंकुरित हो, धरा पर हरी घास का गलीचा बिछ जाए। पशु–पक्षी प्रमुदित हो जाएँ, खेत हरे–भरे हो जाएँ, किसान खड़ी फसल को देखकर हर्ष मग्न हों। बरसो, रे बदरा! बरसो।

❀❀❀

गतांक से आगे–

भाग्यवान गृहस्थी

लेखकः महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

सत्कार तथा परीक्षा

गृह पर पहुंचे। देवी तो फाटक पर खड़ी प्रतिक्षा कर रही थी परन्तु साधु ने उसे पहले ही नमस्कार बोल दी। मर्यादापूर्वक बिठाया, भोजन परोस सामने रखा।पकोड़े थे भिन्न–2 प्रकार के बिना लवण, लवणीय तथा लखण, मिर्च मसाले वाले पृथक् रखे। साधु ने देखा और पूछा, हैं तो सब पकोड़े परन्तु भिन्न–2 क्यों।

देवी– हमें ज्ञान न था कि किस प्रकार के महाराज का हितकर और प्रकृति अनुकूल हैं। साधु ने कहा, हमें तो जैसा और जो भी मिल जावें, सब हितकर और अनुकूल हैं। इस बात का कभी विचार नहीं करते।

परीक्षा असफल

खाने लगे तो पहले बिना लवण पकोड़े पर हाथ पड़ा, उनमें स्वाद न आया। दिल में लज्जित हुए क्रि यह तो झूठ हो गया। पहले तो बिना नमक अस्वाद न लगते थे आज क्यों ऐसा प्रतीत हो रहा है। खाते सब भूल गया। यही विचार समाया रहा जब खा चुके तो लवण मसाले वालों को अधिक स्वाद पाया। तो अन्त में ज्ञात हुआ कि यह भी परीक्षा थी, अभिमान किया, असफल ही रहा और विचारने लगा कि यदि कोई और गृहस्थी होता जो कृत्रिम सेवा करने वाला होता तो ऐसे शब्द भी और प्रकार के प्रयोग करता। देवी ने तो ऐसे शब्द बोले कि जिससे उसकी तो भक्ति टपके, परीक्षा मालूम ही न पड़े। यदि कह देती कि जो आप को अभिष्ट तथा रूचिकर है वह खावें मेरी आसक्ति का उसे पता लग जाता कि मैं स्वाद के पीछे मरता हूँ। परन्तु ऐसा कहा कि जो आपको हितकर तथा प्रकृति अनुकूल हो, शब्दों में कितना भक्ति भाव भरा है। परन्तु मुझे आज अपना ज्ञान हुआ कि मैं स्वाद के लिए खाता हूं परन्तु फारसी के एक कवि ने और ही कहा है–

खुर्दन बराए जीस्तनो जिक्र करदन अस्त।
तूं मोतकिद के जीस्तन अज बहरे खुर्दन अस्त।।

अर्थात् खाना जीने और प्रभु भक्ति के लिए है तेरा मत है कि जीना खाने के लिए है। मुझे नमक मसाले में आसक्ति है यह देवी तो साक्षात् पूजनीय देवी है मेरे आन्तरिक दोष को धोने वाली है।

धन्यवाद

खा पीकर जब निवृत्त हुए देवी ने हाथ जोड़कर बड़ी श्रद्धा से धन्यवाद किया कि आपने हमारे

जैसे क्षुद्र जीवों को दर्शन दिया और हमारे साधारण भोजन को स्वीकार कर कृतार्थ किया।

ऐसा कह और कुछ भेंट सामने धरी और कहा, कल्याण के लिए सुगम उपदेश और उपाय बताइये।

उत्तर

साधु–देवी! ऐसा गृहस्थ मैंने तो अपनी आँखों से नहीं देखा। मैं क्या उपदेश करूं? मेरा तो अभिमान आपने चूर–चूर कर दिया। रहा–सहा दोष भी मेरा आज मुझे प्रतीत करा दिया कि मैं किस गर्व में था।

भेंट, भेंट के रूप में देवी को लौटा दी और देवी ने क्षमा मांगी और वह चल दिये भक्त पहुंचाकर वापस आया।

अन्त का प्रभाव

रात्रि को शयन किया। रात्रि क्या थी तनकि ऊंघ आती तो ऐसा प्रतीत होता कि देवी कह रही है ''साधो! साधु के श्वांस अनमोल होते हैं, इन्हें वृथा न गंवा, प्रभु के ध्यान में लगा।''

ऐसे रात्रि भर बार–बार उठकर बैठता और ध्यान करता।

प्रातः हुई और मन में विचार आया आज अभी उसी गृहस्थी के गृह पर जाकर बासी टुकड़ा मांगो।

(कहां वह प्रतिज्ञा कि गृहस्थी के गृह पर जाकर भिक्षा याचना करने खाने की शपथ ली थी आज भिक्षा के लिए स्वयं दौड़ा जा रहा है। देवी के पवित्र विचार और सद्व्यवहार उस गृहस्थी की याद दिला रहे हैं।) उनके घर पहुंचा, क्या देखा कि बालक बैठे हैं हर बालके सन्मुख थाली में आधा–आधा वासी टुकड़ा और दही रखी है ज्यों ही उन्होंने देखा, सब उठ खड़े हुए और नमस्कार की। देवी ने भी नमस्कार की। भक्त गृह पर न था।

बालकों का आतिथ्य

और तो था नहीं। सब बालकों ने अपना आधा–2 दिया। साधु ने कहा बच्चो! तुम खाओ, तुम्हारा मैं नहीं लेता। वह रो पड़े। कहा, क्यों हम ऐसे पापी हैं कि आप हमारी आधी रोटी भी स्वीकार नहीं करते।

सत्याग्रह

अब तो आपके बिना हम नहीं खायेंगे, सत्याग्रह करेंगे।

साधु ने एक का आधे से आधा ले लिया और कहा–अब तुम खाओ। अन्य बालकों की तोतली भाषा में–हम तो देंगे ही, नहीं तो तुम्हारे मुख में ग्रास–ग्रास देवें।

साधु झुका

साधु बालकों की इस मीठी और दिल से निकले शब्दों से प्रभावित तो हुआ और सबसे आधे का

आधा ले लिया और खाया। बच्चों के प्रेम के आगे साधु झुक गया और कहा–

वाह रे बालको! क्षुधा तो मुझे बड़ी थी परन्तु प्रेम के कतिपय ग्रासों ने मेरी उदरपूर्ति कर दी। बड़ी हर्षित आत्मा से आशीर्वाद दी और चल दिया।

वेद भगवान् सत्य कहता है कि वह गृहस्थी भाग्यवान है जिसे अतिथि दूर से याद करते आवें और घर पूछते आवें, देखिये

येषामद्ध्येति प्रवसन्येषु सौमनासो वहुः।
गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः।। –यजु0 3/42

वह गृहस्थी बड़ा भाग्यवान है जिसको अतिथि जन दूर बैठे हुये भी याद करते हैं और बुलाते आते हैं।

अतिथि दो प्रकार के हैं एक वह, जिनकी सेवा वस्त्रादि से की जाती है, ऐसे अतिथि से उनको कोई लाभ नहीं क्योंकि वह अपने आराम के लिए आते हैं। दूसरे वह कि जिनकी गृह में पहुंचकर वृत्ति टिक जाये, वह भाग्यशाली है, ऐसा अतिथि कुछ दे जाता है। गृहस्थी अपने आपको नम्र दिखाता है और अतिथि सेवा के पश्चात् कहता है कि महाराज हम तो स्वार्थी हैं, हमें भाड़ा दो। हमें बताओ कि हमारा किस प्रकार बेड़ा पार हो ऐसा मार्ग बताओ कि जिससे आत्मा को रस आये। अब वह भक्ति का रस बताता है, एक बार तो वह उनके पापों को धो देता है जिस प्रकार जल कुछ काल तक ठण्डा रखता है, उसी प्रकार गृहस्थी का पाप धुलकर वृत्ति टिक जाती है। तभी वेद ने अतिथि की सेवा की महिमा को गाया है। यहां तक वेद भगवान् ने बताया कि जिस गृह से अतिथि निराश होकर लौट जाता है वहां का ऐश्वर्य, यश, कीर्ति आदि सब कुछ ले जाता है।

अतः गृहस्थियो! सावधान रहो। वेद की आज्ञा का पालन करते हुए गृहस्थ को चमकाओ और जीवन को सफल बनाओ। प्रभु देव आप लोगों को सुमति तथा बल प्रदान करें ताकि इस आदेश को आप भली भांति समझ तथा उद्देश्य पूर्ण कर सकें। ❁❁❁

पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से निवेदन है जिन्होंने वर्ष 2016 का शुल्क अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष 2017 के वार्षिक शुल्क के साथ शीघ्र ही **'सत्य प्रकाशन'** कार्यालय को जमा करायें ताकि पत्रिका व विशेषांक सुचारू रूप से आपको प्राप्त होते रहें। इस वर्ष का विशेषांक **''भारत और मूर्तिपूजा''** छपकर तैयार हो रहा है बहुत जल्दी ही आपके हाथों में होगा। **आप यथाशीघ्र बकाया शुल्क भिजवायें।**

–व्यवस्थापक तपोभूमि मासिक

सत्साहित्य का प्रचार–प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

दंड

लेखकः– डॉ० गोकुलचन्द नारंग

यदि बालक में आरम्भ से ही आज्ञा पालन का स्वभाव है तो दंड देने की आवश्यकता ही न पड़ेगी। और जहां तक पड़े दंड दिया ही न जावे, तो ही अच्छा। दंड कोई लाभदायक नहीं है। यदि ध्यान दिया जाय, तो दंड देने की आवश्यकता यह बतला देगी, कि अब दंड देने से कुछ अधिक लाभ होने की संभावना नहीं है। किन्तु तो भी दंड एक आवश्यक पदार्थ है। जिस प्रकार वैद्य रोगी के प्रति क्रोध नहीं करता। इसी प्रकार आपको भी दंड के कारण से क्रोधित न होना चाहिये यदि क्रोध पूर्वक दंड दिया जायगा तो, मानो माता पिता अपना (द्वेष) निकाल रहे हैं। इसका प्रभाव चरित्र गठन पर कुछ भी न पड़ेगा। मानलो कि छोटा बालक केवल शरारत के कारण रो रहा है, और इतनी अधिकता से रो रहा है, कि उसके स्वास्थ्य के बिगड़ जाने की सम्भावना है तो उसे पकड़ उल्टा लिटा, पीठ में दो चार तमाचे धीरे से लगा दो। जरा अधिक रोकर वह सो जायगा। यह इलाज छोटे बालक का है। बालक को बंद और अंधेरे कमरे में बंद कर देना या रोटी न देना यह अत्यन्त बुरे दंड हैं। पारितोषिक में मिठाई आदि खाने की वस्तुओं को न देना चाहिये। पहली अवस्था में भूखे रहने से स्वास्थ्य बिगड़ने और इसी अवस्था में जीभ से चटोरा होने का भय रहता है।

बालक को अंधेरे कमरे में बंद करके अंधेरे से डरना नहीं सिखलाना चाहिये। वरन् उनके हृदय से अंधेरे का भय निकाल देना चाहिये। बहुधा देखा गया है कि जवान मनुष्य भी बहुतेरे अंधेरे में नहीं सोते, अथवा उस प्रकार सोने से डरते हैं। इसका कारण वही, बचपन में अंधेरे वाला डर ही होता है। बालकों को चिराग बंद करके सुलाना चाहिये। यह दंड विधान ठीक नहीं है।

प्रथम तो इस बात का डर ही भयानक बात है। यहाँ तक कि पढ़ाते समय भी डर न दिखलाना चाहिये। शरीर के समस्त तत्वों में मन अत्यन्त प्रबल हो जाया करता है। इसी से प्रसाद से देश में इतने कायर, डरपोक और झूंठे मनुष्य दृष्टिगोचर होते हैं। जिसके हृदय में भय स्थान पाये हुये हैं, वह न तो बहादुर और न सच्चा हो सकता है। जरा–2 सी बात में बालकों के हृदय में डर डाला जाता है। बालक को जहां कुछ भीं समझने की शक्ति हुई, वहीं भय का पाठ पढ़ा दिया जाता है। भले प्रकार याद रखना चाहिये, कि जिस प्रकार सुकृति का मूल आज्ञापालन है, उसी तरह कुकृति का मूल भय है। निडरता ही के कारण से नैपोलियन बोनापार्ट ने संसार की जड़ हिला दी थी। वह एक सामान्य ही मनुष्य था। यदि स्वामी दयानन्द सरस्वती में भय होता, तो वह क्या कर सकते थे? भय, कमीनापने कृतघ्नता और चरित्र नाश का मूल है। उससे कुछ भी न हो सकेगा। निर्भय मनुष्य ही संसार का एक क्षेत्र अधिपति हो सकता है। वह काल से भी नहीं डरता मिथ्याभाषण, अपकार, कृतघ्नता आदि पापों से उसे स्वाभाविक घृणा होती है।

वेद शिक्षा देता है।

अभयं मित्रा दभयं मित्रा0 अथर्ववेद

"परमपिता! न हमें अंतरिक्ष से भय हो, न आकाश से। न पीछे से और न आगे से। न नीचे से और न ऊपर से। बैरी से भय हो न मित्र से, न विदित से भय हो और न अविदित से। न रात से डरूं, न दिन से। हे परमत्मन्! चारों दिशाएँ हमारी मित्र बन जायें।"

बालक को भय दिखाने के अभिप्राय से जान से मार डालना अच्छा है। एक विद्वान् का वचन कैसा अच्छा है?

बचपन में, अनुमान लगाने की शक्ति प्रबल होती है। आपको भूत कहने से, सिवाय वर्णमाला के दो शब्दों के और कुछ नहीं प्रतीत हुआ। पर बच्चे के सन्मुख एक अत्यन्त भयानक काली सूरत, कि जिसकी लम्बी-2 बाहें-सूप से कान, आग सी आंखें और मूसल सी नाक है, आ खड़ी हुई। डाक्टर लोगों ने अपने अनुभव से यह बतलाया कि उनके पास अक्सर इस प्रकार के बच्चे लाये जाते हैं, कि जिनके मस्तक भूतभय के कारण बिगड़ गए। विलायत में एक बालक भूतभय से मर गया था कि जिसका हाल समाचार पत्रों में प्रकाशित भी हुआ था।

यह ठीक है, कि भूत आदि का भयानक भय वही माता-पिता दिलाया करते हैं। जो अपनी अयोग्यता के कारण माता-पिता बनने के योग्य नहीं हैं। किन्तु समझदार मनुष्य भी इस प्रकार नहीं तो दूसरे प्रकार से ही उनको डराया करते हैं। जैसे यदि तुम अमुक कार्य न करोगे तो पीटे जाओगे। पीटे जाने के भय से ही वह कार्य करो, भला सोचो तो यह क्या अच्छी बात है? इससे तो वह बिना भय के कोई कार्य ही न करेगा। और झूंठ बोलना व मक्कारी करना भी सीखते हैं। वैसे तो जो कार्य प्रीति और सुशिक्षा से होता है, वह किसी प्रकार से नहीं होता और भय के लिए तो-एक दृष्टि ही बस है। दिन पर दिन कानून बनते हैं-जिधर देखो उधर लाल पगड़ी दृष्टि आती है, किन्तु अपराधों में कमी नहीं होती। गवर्मेंट जरा सुशिक्षा का प्रचार कर लोगों में प्रीति भर के भी देखले कि उसकी कौनसी रीति बाधक है।

भय का स्थान हो जाने से, बालक का हृदय मिथ्यावाद और छल कपट से परिपूर्ण हो जाता है, उनसे केवल 'नेकी करो' न कहना चाहिये। किन्तु दृष्टान्तों द्वारा अनुकरणों और शिक्षाओं द्वारा उनके हृदय में अच्छे कर्मों की दशा को प्रबल बना देनी चाहिये। फिर डर दिखलाने की आवश्यकता ही न पड़ेगी। मान लीजिए कि बालक ने कोई अपराध किया, आपने उसे दंड दिया और कहा कि आगे अधिक दंड दिया जायगा। बालक ऐसा प्रयत्न करेगा जिस से आप को पता ही न चले। और यदि आपने जान लिया, तो वह नट जायगा। इससे आपको भी कष्ट होगा और बालक का भी आगामी जीवन कंटक मय हो जायगा। इस कारण उसे उस अपराध से हार्दिक घृणा ही करा देना सर्वोत्तम है।

बालक को व्याख्यान द्वारा समझाना व्यर्थ है। जिस समय आप लेक्चर दे रहे होंगे, उस समय आपका लड़का पतंग लड़ाने की धुन में मस्त होगा। उसे इतनी समझ कहां, कि जिससे वह समझे कि

व्याख्यान को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिये। बालकों की शिक्षा का क्रम ही दूसरा सोचना चाहिये। जैसे, जब बालक कोई अपराध करे और उसे स्वीकार भी करे, तो उसे दण्ड मत दो और न उसे अपने दिल की बात कहने से रोको। बहुधा लोग मूर्खतावश बड़ी बुरी सजा देते हैं। यदि कोई आज्ञा दी गई या किसी कार्य से रोका गया और बालक ने न माना, तो उस पर माता-पिता कुछ ध्यान नहीं देते। किन्तु उससे यदि कोई बुरा परिणाम निकला, तो लड़के की चमड़ी उधेड़ डालते हैं। जैसे, कि मना किया गया कि घड़ी मत छुओ। बालक ने न माना और वह कभी यहां और कभी वहां उसे रखता रहा। पिता ने ध्यान नहीं दिया, और यदि रखते समय, असावधानी से घड़ी छूट गई, और गिरकर टूट गई, तो बालक की शामत आ गई। भला बतलाइये तो घड़ी टूटने का जिम्मेवार बालक किस प्रकार से हुआ? गोया आपको दोचार आने पैसे की पीर है-बालक की शिक्षा की परवाह नहीं है। उन को उसी समय सजा देनी चाहिये (यदि देनी थी) कि जिस समय पहले पहल बालक ने घड़ी को हाथ लगाया था। जब बालक आकर स्वयं अपना अपराध स्वीकार करे तो उसको धमकाओ नहीं, वरन् शाबासी दो। और हानि के लिये शोक प्रदर्शित करो, जिससे बालक जाने, कि उसने दूषित कार्य किया है, जो पिता की अप्रसन्नता का कारण हुआ है। इन बातों से बालक ध्यान रक्खेगा कि वह कभी ऐसा कार्य न करेगा जिससे उसके माता-पिता दुखी हों।

यदि बालक छोटा है, तो उसे ऐसे हानिकारक कार्य के लिये भी मत रोको कि जिसके लिये उसने हठ पकड़ी हो। यदि वह दियासलाई के लिये हठपूर्वक रो रहा है, और समझाना नहीं मानता, तो उसको दियासलाई जलाकर अपना हाथ जला लेने दो। इससे पुनः इस प्रकार की हठ नहीं करेगा। और आपके कहने का मूल्य भी उसे मालूम हो जायगा। वैसे वह कोई महान गूढ़ बात या आपका भय समझेगा जहां तक हो हर एक बात का अनुभव होना चाहये। दण्ड के सम्बन्ध में इतना ही कहना बस होगा कि पुत्र आपको जालिम न समझे, किन्तु प्यारा पिता जाने। और वह कोई कार्य इसलिये न करे, कि आप उसे पीटेंगे जब वह आपके सम्बन्ध में विचार करे, तो वह भूल जाय कि आपके हाथ में छड़ी या रूल है।

बालक आग से न खेलें, पानी में न कूदे, खिड़की से बहुत न झांके, कडुआ न बोले, गालियां न सीखें। इन बातों पर यदि जब कभी छड़ी से भी काम ले लिया जाय, तो बुरा नहीं। ऐसे भय से वह कायर भी न बनेंगे। क्योंकि यह दूसरे ढंग की बातें हैं, और उनके लाभ हानि को वह स्वयं सोच सकता है।

छोटे बालकों को बहलाने के लिये, जो धाय या नौकर रक्खा जाय। वह इस योग्य अवश्य होना चाहिये, कि बालक को सर्वदा अच्छी से बातें बतलाया करें। हमें सशोक कहना पड़ता है, कि अमीर लोग अपने लिये साईस ऐसा रखेंगे कि जो घोड़े की सम्बन्ध वाली समस्त बातों से परिचय रखता हो, घोड़े की दाश्त हर एक तरह से कर सकता हो। किन्तु अपने बालक के लिये नौकर तलाश करते समय इस बात का ध्यान नहीं रखते, कि वह बालक का साथी बनने के योग्य है, अथवा नहीं। आजकल हजारों धनिक पुत्र वद चलन नौकरों के कारण बिगड़ जाते हैं। जो नौकर घर के अन्य किसी कार्य के योग्य नहीं, वही बच्चे के लिये चुना जाता है। ऐसे नौकर या नौकरानी बालक को भूत भय से, मार पीट से, अन्य बुरी बातों से बिगाड़

देते हैं। यदि माता-पिता भी उन्हीं नौकरों की भांति अशिक्षित हैं। तो उनके सम्बन्ध में यही कहना है, कि अब पुत्र पैदा करने के लिये उनको सुशिक्षित होना चाहिये। और जो समझदार हैं, उनसे निवेदन है कि अपने बालक रूपी फूल बाग के लिए जो माली या मालिन रक्खो, उसे जांच लो कि वह वैसी योग्यता रखता है या नहीं। कि जिससे पुष्प सुगन्धित प्रकट हो सके।

नौकरों ही के कारण से कितने धनिक पुत्र वैश्यगामी नशेबाज और ज्वारी हो गए हैं। यह बातें प्रत्यक्ष देखी जा सकती हैं। हमको चाहिए कि पढ़े लिखे और उच्च विचार वाले किसी अच्छे सज्जन को अच्छा वेतन देकर पुत्र की रक्षार्थ नौकर रक्खें। क्योंकि सन्तान का भविष्य उसी समय से आरम्भ होता है, कि जब वह नौकरों की गोद में खेलते हैं। ❁❁❁

तपोभूमि मासिक के पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका प्रतिमाह आप तक पहुँच रही है। हमारा हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पत्रिका में उच्चकोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित करके आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये यह पत्रिका जन-जन तक पहुँचे। ताकि वे इसका पूर्णतया लाभ प्राप्त कर सकें। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप सबका सहयोग हमें मिले।

'तपोभूमि' मासिक के पाठकों से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 150/- एक सौ पचास रूपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 1500/- एक हजार पाँच सौ रूपये भेजकर पत्रिका का लाभ उठायें।

हम आपको वार्षिक विशेषांक सहित पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

-धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या-

इण्डियन ओवरसीज बैंक
शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा
*I F SC Code- I OB A 0001441 **'सत्य प्रकाशन'** खाता संख्या- 144101000002341*

सत्य प्रकाशन के पुनः प्रकाशित उपलब्ध प्रकाशन

शुद्ध रामायण सजिल्द	मूल्य 220)
शुद्ध रामायण अजिल्द	मूल्य 170)
शुद्ध हनुमच्चरित	मूल्य 60)
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	मूल्य 40)
यज्ञमय जीवन	मूल्य 30)
भारत और मूर्तिपूजा	मूल्य 30)
मील का पत्थर	मूल्य 20)
भ्रांति दर्शन	मूल्य 20)
चार मित्रों की बातें	मूल्य 20)
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	मूल्य 20)
गृहस्थ जीवन रहस्य	मूल्य 20)
श्रीमद् भगवद्गीता एक सरल अध्ययन	मूल्य 20)
सन्ध्या रहस्य	मूल्य 20)
गीता तत्व दर्शन	मूल्य 20)
दयानन्द और विवेकानन्द	मूल्य 15)
बाल मनुस्मृति	मूल्य 12)
इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	मूल्य 12)
ओंकार उपासना	मूल्य 12)
दादी पोती की बातें	मूल्य 10)

दुष्टों का दमन

लेखकः बाबू सूरजभान वकील

सुखशान्ति की प्राप्ति और जीवन निर्वाह के लिए जिस प्रकार पारस्परिक सहायता की जरूरत है उसी प्रकार मनुष्य को दुःख देने वाले और उत्तम नियमों को तोड़ने वाले दुष्टों के दमन की भी आवश्यकता है। अर्थात् ऐसे मनुष्य इन खोटे कामों से हटाये जावें, उनसे भले कामों का अभ्यास कराया जावे और आपस के तिरस्कार तथा राज्यदण्ड द्वारा वे पूरी तरह दबाये जावें। ऐसा करना भी मानो मनुष्य जाति की सहायता करना है। क्योंकि ऐसा किये बिना मनुष्य जाति की अशान्ति तथा संकट दूर नहीं हो सकता है। परन्तु शोक है कि जातिभेद और अनेक धर्मों के पक्षपात ने इस कार्य में पूर्ण बाधा डाल रक्खी है। प्रत्येक जाति वाले अपनी जाति के दुष्ट से दुष्ट मनुष्यों के पकड़े जाने, राज्यद्वारा दंडित होने या दूसरी जातिवालों से तिरस्कृत होने में अपनी बदनामी समझते हैं, इसलिए उनसे जहाँ तक हो सकता है वे उनकी तरफदारी करते हैं–उन्हें बचाते हैं। परिणाम इसका यह होता है कि सभी जातियों में दुष्ट लोगों की संख्या बढ़ती जाती है, जो सब प्रकार के उपद्रव मचाते हैं, मनुष्यों को सताते हैं और मूछों पर ताव देकर बेखटके फिरा करते हैं।

यही हाल धर्मपंथों का हो रहा है। हिन्दुस्तान में हिन्दू, जैन, सिक्ख, आर्यसमाज, कबीरपंथ, दादूपंथ, बल्लभपंथ (श्रीवैष्णव), राधास्वामी पंथ, मुसलमान, ईसाई आदि अनेक धर्म प्रचलित हैं। एक एक धर्म के अनेकानेक पंथ होकर सैकड़ों हजारों पंथ बन गये हैं। प्रत्येक पंथवाला अपने अपने पंथ का पक्षपात करने, अपने अपने पंथवालों की बुराइयों को छिपाने और भयंकर दुष्टों को अपनी शरण देने में अपने पंथ की रक्षा समझता है; विशेष करके अपने पंथ के साधुओं, गुरुओं और धर्मोपदेशकों की बुराइयों को तो वह अवश्य ही छिपाता है और अपने पंथ की बदनामी के भय से बड़े–बड़े कुकर्मियों को भी निभाता है। यहाँ तक कि अगर कोई दुष्ट उनके धर्म के साधु, धर्मगुरु आदि का वेश धारण करके अपने को पुजवाता है और उनको खूब ठगने लगता है, तो भी, भेद खुलने पर भी, ऐसे दुष्टों को पकड़वाकर राज्यदंड दिलाने में वह अपने धर्म की बदनामी समझता है। इसका फल यह हो रहा है कि सभी धर्मों में पाखंडी साधु और धर्मगुरु बढ़ते जा रहे हैं जो कि बिलकुल निर्लज्जता और ढिठाई के साथ लोगों को लूटते और बेधड़क होकर नाना प्रकार के कुकर्म करते हैं।

एक समय भारतवर्ष में यह प्रथा चल पड़ी थी कि राजालोग अपने अपने राज्यों में बड़े–बड़े जबरदस्त चोर और डाकुओं को बसाते थे और उनसे यह शर्त कर लेते थे कि वे न तो उनके राज्य में कहीं चोरी, डकैती या लूटमार करेंगे और न दूसरे राज्यों के लुटेरों को ही उनके राज्य को लूटने देंगे, परन्तु दूसरे राज्यों को खूब लूट–लूट कर लावेंगे। पहले तो एक दो राजाओं ने ही इस प्रकार के लुटेरों को अपने राज्य

में बसाया होगा, परन्तु धीरे-धीरे सभी राजाओं ने अपने अपने राज्यों में ऐसे लोगों को बसा लिया और इस तरह अन्य राज्यों के लुटेरों से अपने राज्य की रक्षा का प्रबन्ध कर लिया। ये राजा लोग अपने-अपने राज्यों के लुटेरों की तरफदारी किया करते थे और जब ये दूसरे राज्यों को लूटकर आते थे तब उनकी रक्षा करते थे। मनुष्यों के हृदय में ऐस घृणित स्वार्थ के आने से मानवजाति की सुखशान्ति में कितनी बाधा पड़ सकती है इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इस देश में जब इस प्रकार लुटेरों को रखने का रिवाज चला था तब प्रत्येक राज्य पर उस राज्य के लुटेरों के सिवा अन्य सब राज्यों के लुटेरों की चढ़ाइयाँ हुआ करती थीं और प्रजा दिन दहाड़े लुटा करती थी। कभी-कभी तो इन लुटेरों की तरफदारी करने के कारण राजाओं में भी लड़ाई छिड़ जाती थी और लाखों मनुष्यों की गर्दनें कट जाती थीं। परन्तु इस प्रकार के स्वार्थी लोगों का राज्य बहुत समय तक कायम नहीं रह सका। शीघ्र ही देश में एक छोर से दूसरे छोर तक मुसलमानों का राज्य फैल गया और इन लुटेरों के बसाने की प्रथा नष्ट हो गई। परन्तु इतना दस्तूर फिर भी जारी रहा कि प्रत्येक ग्राम के लोग अपने-अपने ग्राम में लुटेरों को बसाते रहे और उनकी सब प्रकार से तरफदारी करते रहे। क्योंकि ऐसा करने से ये लुटेरे अपने ग्राम में लूट मार नहीं करते थे। इसका फल भी यही हुआ कि कोई भी ग्राम लुटेरों से खाली नहीं बचा। प्रत्येक ग्राम अपने ग्राम के लुटेरों के सिवा अन्य सब ग्रामों के लुटेरों से लूटा जाता था, रातदिन लूटमार मची रहती थी और मनुष्यों को जीना भारी हो गया था। अन्त में अंग्रेजी राज्य के उदय से इन सब लुटेरों तथा डाकुओं का उपद्रव मिट गया और दयालु पादरियों के प्रयत्न से उक्त लुटेरे अपने बाप-दादाओं का पेशा छोड़कर खेती कारीगिरी आदि अच्छे-अच्छे धन्धे करते हुए सुख चैन से रहने लगे। इसीलिए अब भारतीय मनुष्यों का जीवन बहुत शान्ति के साथ व्यतीत होने लगा है और लूटमार तथा छीना-छपटी बहुत ही घट गई है।

परन्तु अब भी इतनी बात अवश्य बाकी रह गई है कि बहुत से अमीर लोग अपने नगर के दो चार बदमाशों की खातिरदारी किया करते हैं। ऐसा करने से वे उनसे अपनी रक्षा समझते हैं और जरूरत पड़ने पर उनके द्वारा लोगों को दबाकर अपना काम भी निकाल लेते हैं। परन्तु बदमाशों का इस प्रकार पालन होने और उन्हें प्रश्रय मिलने से दिन पर दिन उनकी संख्या बढ़ती ही चली जाती है। ये लोग शहर भर को सताते और मौका मिलने पर बारी-बारी से उन अमीरों की भी दुर्गति बनाते हैं। वे एक को सताकर दूसरे की शरण में पहुँच जाते हैं और अपना मतलब गाँठकर आनन्द के तार बजाया करते हैं। इसके सिवा आजकल इतना स्वार्थ तो सभी दिखलाते हैं कि नगर के बदमाशों के दमन करने की कोशिश में शामिल न होकर उनको अपना बैरी नहीं बनाते हैं, बल्कि खुशामद से नमस्कार, पालागन, राम राम करके या थोड़ी बहुत भेंट पूजा देकर यही कोशिश करते रहते हैं कि ये बदमाश लोग शहर भर को चाहे जितना सतावें, परन्तु हम पर मेहरबानी रक्खें। इसका फल यह होता है कि ये बदमाश लोग बारी-बारी से सबको ही सताते हैं और जब जिसको सताते हैं तब उसके सिवा दूसरों को अपना सहायक बना लेते हैं। गरज इस

-शेष पृष्ठ सं. 22 पर

मित्रता

लेखकः- श्यामबिहारी मिश्र

जिन मनुष्यों में परस्पर सहानुभूति और सहायता की इच्छा हो उन्हें मित्र कहते हैं। प्रेम मित्रता का जीव है। यह प्रेम विशुद्ध होना चाहिए, कारणवश नहीं। बहुतों का विचार है कि जो प्रेम कारणवश होता है वह वास्तविक प्रेम है ही नहीं। यह कथन एक अंश में दार्शनिक सिद्धान्तानुसार यथार्थ भी है, किन्तु फिर भी संसार में ऐसे विशुद्ध प्रेम के उदाहरण अधिकता से नहीं मिलते। ईश्वर सम्बन्धी प्रेम में भी लोग कभी-कभी स्वार्थकी दुर्गंन्धि लगाते हैं। परोपकार सम्बन्धी प्रेम शुद्धतर होता है, किन्तु यदि आत्मा के ज्ञान को विस्तीर्ण कीजिए तो परमात्मा और आत्मा में कोई भेद रहता ही नहीं और स्वार्थ तथा परोपकार एक ही हो जाते हैं। इन ऊँचे दार्शनिक सिद्धान्तों को छोड़कर हम यहाँ मोटे प्रकार से विशुद्ध प्रेम का कथन करते हैं। सच्ची मित्रता के लिये विशुद्ध प्रेम का होना आवश्यक है। हमारे उपरोक्त लक्षण में सहानुभूति के अन्तर्गत प्रेम-पूर्णता आ आती है। इस स्वार्थी संसार में पूर्ण मित्रता के उदाहरण बहुधा देख नहीं पड़ते। मित्रता के लिये जो बातें आवश्यक हैं, उनकी मात्रा जहाँ जितनी अधिक होगी, वहीं मित्रता भी उतनी अधिक होगी।

कुछ लोगों का विचार है कि मित्रता के लिये श्रद्धा एवं आदरणीय भाव भी आवश्यक है। हमारी समझ में मित्रताओं में यह बात बहुतायत से देखी अवश्य जायगी, किन्तु मित्रता के लिये यह आवश्यक नहीं है। हाँ सज्जन मित्रों के लिये यह निःसन्देह आवश्यक है। चोरों और डकैतों में भी मित्रता होती है और बहुधा श्रद्धा भी होती है, किन्तु ऐसा भी चोर हो सकता है जो चोर होते हुए भी चोर-विद्या पर श्रद्धा न रखता हो। ऐसा व्यक्ति स्वार्थवश उस्ताद चोरों से मित्रता अवश्य करेगा किन्तु अपने चित्त से उनका आदर नहीं करेगा। फिर भी सहानुभूति और सहायक विचारों के कारण उनकी मित्रता सच्ची कही जावेगी। साधारणतया मित्रता में आदरणीय बुद्धि प्रायः पाई जावेगी और मोटे प्रकार से मित्रता का अंग भी मानी जा सकती है।

शुद्ध निष्कारण मित्रताएँ संसार में कुछ कम देखी जाती हैं, और मित्रभाव जुड़ने में स्वार्थादि का कोई कारण अवश्य लगा रहता है। फिर भी प्रत्येक स्वार्थजन्य मित्रता अशुद्ध नहीं है। मोटे प्रकार से वही मित्रता अशुद्ध मानी जायगी जो तत्कालिक या किसी खास स्वार्थ के कारण हो। फिर भी जिस मित्रता में सहृदयता की मात्रा जितनी ही कम और आशा की जितनी ही अधिक होती है, वह उतनी ही कच्ची होती है, क्योंकि आशा के टूट जाने पर वह स्थिर नहीं रह सकती। सांसारिक मित्रताओं में आशा और सहृदयता की मात्राएँ प्रायः मिली रहती हैं, किन्तु वास्तविक मित्रता की परिपोषक सहृदयता ही है। प्रत्येक मनुष्य को

चाहिए कि अपने मित्रों में यह सदैव विचार रहे कि किन का लगाव वआशा पर अवलंबित है और कितना कितना? जो लोग इतनी परख की पात्रता नहीं रखते, वे संसार में साधारणतया कभी वास्तविक मित्र नहीं पाते और खुशामदियों से घिरे रहते हैं। सन्मित्र का पाना एक बहुत बड़े भाग्य की बात है। बहुत बड़ी परख करने और कष्ट उठाने से सज्जन मित्र मिल सकते हैं। जो मूर्ख मित्र और खुशामदी का अन्तर नहीं समझ सकते, वे बहुधा खुशामदी ही की ओर विशेषतया झुकते हैं, क्योंकि चापलूस लोग स्वार्थ के कारण अपने आचरणों से उससे उचित से कहीं अधिक श्रद्धा भक्ति दिखलाते और सदा उसकी हाँ में हाँ मिला कर उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न किया करते हैं। कोई सच्चा मित्र अपने को इस प्रकार नीच बनाना भला काहे को पसन्द करेगा। सो ऐसे पुरुष को वास्तविक मित्र होने योग्य मनुष्य मिलने पर भी इन दोनों में या तो मित्रता का अंकुर फूटता ही नहीं और यदि भाग्यवश फूटा भी तो उसके बढ़कर वृक्ष बनने की नौबत नहीं आती और वह मूर्ख की ओर से उदासीनता रूपी अनावृष्टि से बीच ही में सूख जाता है। मित्रता बहुधा अग्नि की भाँति यकायक नहीं धधक उठती, वरन् वृक्ष की भाँति धीरे-धीरे अंकुए से बढ़ती है। कहा भी है कि-

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण, लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्ध-परार्ध-भिन्ना, छायैव मैत्री खलसज्जनानाम्।।

खलों की मित्रता दिन की पूर्वार्धवाली छाया के समान पहले बड़ी होती है किन्तु धीरे-धीरे क्षीण होती जाती है, और उधर सज्जनों की मैत्री दिन के परार्धवाली छाया के समान पहले तो छोटी होती है किन्तु समय के साथ बढ़ती ही जाती है। खलों की जिस मैत्री का यहाँ वर्णन हुआ है वह वास्तव में मैत्री न होकर केवल धोखेबाजी है।

संसार में सभी मित्रताएँ निष्कारण प्रारम्भ नहीं होतीं, किन्तु भद्र पुरुषों का यह सहज स्वभाव है कि किसी भी कारण से जब किसी से एक प्रकार का सद्व्यवहार बढ़ गया, तो वह कारण निकल जाने पर भी उस में क्षति न आने पावे। भद्रत्व तथा वजादारी के यही माने हैं कि जिसको एक बार जैसा कहकर पुकारा उसे श्रेष्ठतर भले ही कहें, किन्तु बिना किसी दूषण के अधमतर कभी न कहना। इसीलिये कहा गया है कि जिसकी बात दो उसके बाप दो। बात का स्थिर रखना सज्जनता का एक बहुत बड़ा अंग है। जिसकी बात एक नहीं उसे पूरा निमुच्छा समझना चाहिए। सज्जन पुरुषों की मित्रताएँ प्रारम्भ में सकारण होने पर भी आगे बढ़कर निष्कारण हो जाती हैं। उधर दुष्ट लोग निष्कारण मित्रता करते ही नहीं।

शुद्ध मित्रता केवल समता सिद्धान्त पर हो सकती है। जो लोग अपने को समान नहीं समझते उनमें आश्रयी-आश्रित एवं ऐसा ही कोई और सम्बन्ध भले ही हो किन्तु शुद्ध मित्रता नहीं हो सकती। शुद्ध मित्रता के लिये मित्रों के धन, वैभव, बुद्धि, विद्या, अधिकार ऐश्वर्यादि में समानता होनी आवश्यक नहीं। किन्तु यह आवश्यक है कि किन्हीं भी सच्चे या झूठे कारणों से वे एक दूसरे को वास्तव में समान समझते

हो और ऐसा ही व्यवहार आपस में करते हों। बिना इसके मैत्री में कुभाव जुड़ जाने से कच्चापन आ जावेगा। अधिक से अधिक यहाँ तक माना जा सकता है कि मित्र चाहे एक दूसरे को समान न भी समझते हों, किन्तु यह आवश्यक है कि वे ऐसे हों कि आपस में समता का व्यवहार कर सकते हों। विचारों में समता का होना बहुत ही अच्छा है, किन्तु यदि व्यवहार तक में शुद्ध समता हो तो विशुद्ध मैत्री मानी जा सकती है। महर्षि द्रोणाचार्य पांचालराज द्रुपद के बालसखा थे, किन्तु जब उसके राजा होने पर ऋषिवर ने उसे जाकर सखा कहा, तब मोहवश वह क्रोधांध हो गया और एक साधारण धनहीन ब्राह्मण द्वारा सखा कहे जाने से उसने अपनी मानहानि समझकर द्रोणाचार्य को अनेक दुर्वचन कहे। इस उदाहरण से द्रुपद का क्षुद्रत्व और द्रोणाचार्य का छलहीन स्वभाव तो प्रकट होता ही है, किन्तु यह भी प्रदर्शित होता है कि जब तक दोनों मनुष्य एक दूसरे को समान न समझें तब तक उनमें वास्तविक मित्रभाव स्थिर नहीं हो सकता।

ऊपर हम मित्रता की मुख्यताओं का वर्णन कर चुके, अब यह कथन शेष है कि कैसे लोग एक दूसरे के मित्र हो सकते हैं और उनको आपस में कैसा व्यवहार करना चाहिए? पहले हम प्रथम विषय को उठाते हैं। स्वाभाविक प्रकार से समप्रकृति के मनुष्य ही एक दूसरे के मित्र हो सकते हैं। जिस समय पांचालराज द्रुपद ने द्रोणाचार्य का उपरोक्त अपमान किया, उस काल मित्रता के योग्य पुरुषों का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया था–

अज्ञान कैसी बुद्धि है तब विप्र दुर्मतिमौन।
कहो मोको सखा सहसा आय के तुम जौन।।
रही हमसों प्रीति तुमसों एक बासहि पाय।
सख्य निर्धन धनिक सों नहिं होत है सुखदाय।।
सूर सों अरुक्लीव सों नहिं होति प्रीति समान।
होति है कृश थूल सों नहिं प्रीति चित–सुखदान।।
सम वित्त ते सम जाति ते द्विज होत सख्य विवाह।
रथी अरथी सों नहीं है सख्य को उतसाह।।

द्रुपद के विचारों से सख्य के लिये हर प्रकार से समता का होना आवश्यक है, किन्तु ध्यानपूर्वक देखने से समझ पड़ेगा कि उन्होंने समता के विचार को बहुत अधिक बढ़ा दिया था। दो मनुष्य चाहे सभी बातों में सम न हों और मुख्य–मुख्य बातों में उनमें प्रचंड असमता हो, फिर भी कुल मिलाकर यदि वे एक दूसरे को सम समझें, तो उनमें शुद्ध मित्रता हो सकती है। अच्छी मित्रता के लिये यह आवश्यक है कि मित्र गण एक दूसरे को आदरणीय समझते हों। अतः जिस गुण को जो मनुष्य आदरणीय समझेगा, प्राकृतिक नियमों से वह उसी प्रकार के गुणी का मित्र हो सकता है। प्रत्येक अच्छी मित्रता के लिये सज्जनता आवश्यक है। जो मनुष्य जीवन–प्रपन्नता के कारण विविध पदार्थों एवं गुणों में मन लगा सकता है, वह

यदि सज्जन भी हो तो अनेक प्रकार के मनुष्यों का बहुत अच्छा मित्र हो सकता है। मित्रता की योग्यता के लिये गुणग्राहकता और वैविध्य बहुत बड़े गुण हैं, तथा आनिर्वृत्य (एकंगीपन) बहुत बड़ा दोष है। जो मनुष्य सब ओर दृष्टि दौड़ा दौड़ाकर सभी या बहुत प्रकार के गुणों को पसन्द नहीं कर सकता, वह तेलीवाले बैल के समान हो जाता है। इस प्रकार जीवन-पूर्णता में बहुत बड़ी क्षति पहुँचती है। यदि राजा द्रुपद अपने ऐश्वर्य से पूर्णतया मदांध न होता, तो उसे द्रोणाचार्य में बहुत से पूज्य गुण देख पड़ते, जैसे कि भीष्म पितामह को देख पड़े, और वह केवल यह कहकर अपनी मूर्खता प्रकट न करता कि-

"सखा ऐसे नरन के नहिं होत भूप सुजान।
धनहीन ब्राह्मण कृपण भिक्षुक फिरत माँगत दान।।"

बहुधा देखा गया है कि जिसके पास जो गुण होता है वह यदि साधारण पुरुष हुआ तो आत्म-प्रेमवश उसी गुण को सर्वोपरि मानकर अन्य परम श्रेष्ठतर गुणों से भी ऐसा ही उदासीन रहता है जैसे कि राजा द्रुपद रहा। गुणोपासक होना जीवन-प्रपन्नता के लिये परमावश्यक है और यही गुण मनुष्य को मित्र बनने योग्य बनाता है। महात्मा बासबेल डाक्टर जॉनसन के गुणों पर ऐसा मुग्ध था कि हजार प्रकार धक्के खाने पर भी उससे जॉनसन के गुणों पर मुग्धता प्रकट किए बिना नहीं रहा जाता था। यही भाव सज्जनता के लिये आवश्यक है और यही मित्रता का प्राण है।

मनुष्य बालवय में बहुत श्रद्धालु रहता है और उसमें श्लाघा का गुण बहुत अधिक होता है। इस अवस्था में दुनिया के छल प्रपंच भी नहीं घेरते और मनुष्यों को सांसारिक चिंताएँ बहुत कम रहती हैं। बालकों में उत्साह की भी मात्रा अधिकता से होती है। अतः वे जो कुछ करते हैं उसे पूर्ण अनुराग और उमंग के साथ। इन्हीं कारणों से यह अवस्था मित्रता के लिये परम उपयोगी है। इस अवस्था में मनुष्य का ज्ञान संकुचित रहता है और वह जानता भी है कि मैं पूर्ण ज्ञानी नहीं हूँ। अतः वह सभी बातों के सीखने का प्रयत्न किया करता है। अतः वह सभी बातों के सीखने का प्रयत्न किया करता है उनमें पूर्ण उत्साह के साथ मन लगाता है। जो मनुष्य जितनी अधिक बातों में मन लगा सकता है उसे उतनी ही अधिक प्रसन्नता हो सकती है। इन कारणों से बाल्यावस्था आनन्द भोगने की उमर है। इस वयस में मनुष्य थोड़ी ही सी बात से बहुत प्रसन्न हो जाता है। बच्चे साधारण गाड़ी को निकलते हुए देखकर ही मारे आनन्द के उछलने लगते हैं। ईश्वर ने यह अवस्था सभी कुछ प्राप्त करने के लिये बनाई है। इसमें मनुष्य विद्या, सुख, मित्र, कौतूहल आदि बड़ी सुगमता से प्राप्त कर सकता है और करता भी है। मित्रता उत्पन्न करने और बढ़ाने के सभी लक्षण बालक में होते हैं। थोड़ी बात से अधिक आनन्द प्राप्त करनेवाली वाणी के कारण बालक मित्रता से पूरा आनन्द उठाते हैं। इसीलिये सयानी अवस्था में भी यह सुख स्मरण रहने के कारण मनुष्य को बालवय के मित्रों पर सदैव श्रद्धा रहती है। यथासाध्य भाई-भाई को मित्र अवश्य होना चाहिए क्योंकि ये प्राकृतिक सखा हैं। सम्बन्धियों में भी यथासंभव मित्रभाव की स्थापना करनी चाहिए।

-(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

ऋषि दयानन्द सरस्वती
का जीवन चरित्र

रचयिताः परम ऋषिभक्त पुरुषोत्तमदास, मथुरा

शिक्षण पाऊँ योग का जिज्ञासा मन माँहि।
उत्तम गुरु की खोज में कुटी–कुटी पर जाँहि।।

मेले में बहु नर–नारि वहाँ आमोद–प्रमोद प्रवाह बहे।
सब ओर से नयन बन्द करके ये मुक्ति टोह में भटक रहे।।
दण्डकारण्य में जिस विधि से सिय लक्ष्मण राम विचरते थे।
आश्रम ऋषि–मुनियों के जाकर सत्संग–लाभ बहु लहते थे।।
ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य इसी विधि कुटिया–कुटिया जाते हैं।
सत्संग साधु जन का करके निज योगाभ्यास बढ़ाते हैं।।
उनमें इनमें है भेद यही वह तीन जने ये इकले हैं।
वे पितु आज्ञा से वन निकले ये शिव–दर्शन को निकले हैं।।

चिरचित उस ग्रामीण ने पहुँचाया सब हाल।
मिला वेश काषाय में मुझे तुम्हारा लाल।।

कह रहा सिद्धपुर जाने की यह सुनत पिता उठ धाये हैं।
ले लिये सिपाही चार साथ सीधे मेले में आये हैं।।
मेले में ढूँढ़े चहुँ तरफा कहीं पता न इनका पाते हैं।
इस क्रम में ही वे एक दिवस इस मन्दिर में घुस जाते हैं।।
गेरुए वस्त्र में मिला लाल, लख लाल वर्ण हो जाते हैं।
'कुलघाती! कुल कलंक! कायर!' कटुवाणी इन्हें सुनाते हैं।।
आसन से उठ गहि पितृ–चरण फिर बोले सुधासक्ति वाणी।
धूर्तों के चक्र चढ़ा बहका, पितु क्षमा करो मम नादानी।।

आप क्षमा अवतार हैं, मैं बालक अज्ञान।
क्रोध शान्त करके पिता कीजे कृपा प्रदान।।

हे पूज्य पिता! सच कहता हूँ मैंने बहु दु:ख उठाया है।
करनी का फल मिल गया मुझे जस बोया तैसा पाया है॥
कोषाग्नि हृदय में धधक रही नहीं तनिक शांत हो पाई है।
सुनते ही पुत्र वचन मानो अग्नि ने घृताहुति पाई है॥
तेरा हृदय पाषाण बना बोले चिल्लाकर बहु भारी।
तू निर्मोही बेपीर महा उत रो-रो मरती महतारी॥
क्रोधाभि भूत हो वस्त्रों की धज्जियाँ-धज्जियाँ कर दीनी।
पहिनाकर श्वेत वस्त्र संग ले चौकसी कड़ी बिठला दीनी॥

दृष्टि बन्ध तो हो गये वे मुनिवर लाचार।
कब पकडूं निज पथ पुनः अवसर रहे निहार॥

है हार जीत की यह बाजी जाने प्रभु किसे जितावेगा।
अपने अपने लग रहे दाँव कोई खोवेगा कोई पावेगा॥
एक तरफ पिता एक ओर पुत्र यह कैसा खेल अनोखा है।
एक तरफ मोह एक ओर धर्म यह कैसा लेखा-जोखा है॥
दो दिन दो रातें बीत गईं तीसरा दिवस ज्यों-त्यों काटा।
तीसरी रात्रि तीसरे प्रहर जब छाया चहुँदिशि सन्नाटा॥
लख द्वारपाल निद्रा-निमग्न जल पूरित लोटा हाथ लिया।
शंका पर 'लघु शंका जाता' अन्यथा लक्ष्य को प्राप्त किया॥

बन्धन से मुक्ती मिली युक्ति दे गई काम।
चलकर एक उद्यान में जा कीन्हा विश्राम॥

उद्यान के अन्दर था मन्दिर उस पर जा ऊपर बैठे गए।
देखें प्रभु आगे क्या करते इन भावों में तल्लीन हुए॥
प्रातः पितु देखा मूल नहीं कहीं भाग गया बहु घबड़ाये।
खोजते ढूंढ़ते चहुँ दिशि में उद्यान उसी में वे आये॥
आँखें फैला-फैला देखा नहीं बेटा कहीं नजर आया।
हो उठे शोक-सन्तप्त! पिता सब दृश्य पुत्र ने लख पाया॥
पर ऐसे छिपकर बैठे वे गति रोक श्वास की वृक्ष तले।
सेवकों सहित अन्त में पिता होकर निराश बाहर निकले॥

आये नीचे उतर कर होता था सूर्यास्त।
सिकुड़ रहा था दिवस-रव रजनी सजती गात॥

दो कोस दूर पर ग्राम एक वहाँ जाकर के विश्राम किया।
पितु चरणों के अन्तिम दर्शन यह भान शुद्ध चैतन्य किया॥
जा पहुँचे नगर बड़ौदा में चेतन मठ आसन जमा दिया।
वेदान्ती साधु वहाँ रहते उनमें ही मन को रमा लिया॥
बनकर पक्के वेदान्ती ये अपने को ब्रह्म बताते हैं।
मिल सकी न फिर भी शान्ति तनिक स्पष्ट भाव दर्शाते हैं॥
अन्त में शान्ति के खोजी बन नर्मदा तीर पर जाते हैं।
वहाँ परम हंस मिल गये एक हो द्रवित इन्हें बतलाते हैं॥

सौम्य! साधु सत्संग की है यदि मन अभिलाष।
चाणोद कर्नाली आश्रम जाकर करो निवास॥

कुछ थोड़ा आगे बढ़ने पर विद्वान् अनेकों पाओगे।
उनके चरणों में निश्चय ही प्रिय! शान्ति सुधा रस पाओगे॥
तत् प्रेरित आगे बढ़ने पर विद्वान् मण्डली इन्हें मिली।
सत्संग-जन्य नव-जीवन पा मन की मुरझाई कली खिली॥
एक परम हंस से पहले तो 'वेदान्त सार' अध्ययन किया।
पश्चात् अनेक अलभ्य ग्रन्थ पढ़ने में मन तल्लीन किया॥
भोजन को स्वयं बनाने में अधिकांश समय लग जाता था।
संन्यास ग्रहण का भाव इसी से रह-रह मन में आता था॥

सद्विद्या के ग्रहण का अवसर परम सुपास।
यही युक्ति शोभन सुलभ ग्रहण करूँ संन्यास॥

दे दीक्षा मुझे कृतार्थ करें यह स्वामी जी को कहलाया।
है आयु अभी थोड़ी इनका यह परम हंस ने बतलाया॥
उत्साह हीन फिर भी न हुए तन्मय हो विद्याध्ययन किया।
यों ज्ञान, ध्यान, चिन्तन, जप में इनने बहुकाल व्यतीत किया॥
चौबीस वर्ष दो महीने की थी आयु इन्हें जब ज्ञान हुआ।
कुछ दूरी पर विद्वान् साधु एक ठहरे हैं यह भान हुआ॥
पाते ही यह सन्देश नव्य तत्काल वहाँ प्रस्थान किया।
दक्षिणी एक पंडित संगले मुनि चरणों में जा नमन किया॥

पूर्ण-काम, विद्या-उदधि दण्डी पूर्णानन्द।
ज्ञान ध्यान में रत सदा शोभन परमानन्द॥

श्री दण्डी जी की सेवा में पण्डित यों गिरा उचारी है।
विद्या सेवन की लगन इसे यह शुद्ध हृदय ब्रह्मचारी है॥
भोजन को स्वयं बनाने में बहु काल नष्ट हो जाता है।
संन्यास धर्म में दीक्षित हो, इससे यह मुक्ति चाहता है॥
दण्डी बोले–यह पूर्ण युवा, संन्यास–ग्रहण निर्दोष नहीं।
वैराग्य–अग्नि की ज्वाला में जल जाते जब तक दोष नहीं॥
आदि से अन्त तक वृत्त सभी श्री पण्डितजी ने समझाया।
इनकी वैराग्य–भित्ति दृढ़ है सन्तोष उन्हें यह करवाया॥

दो दिन तक जप–साधना रख विधिवत उपवास।
दिवस तीसरे प्रात ही पहुँचे दण्डी पास॥

दण्डी पूर्णानन्द ने दीक्षा दई ललाम।
दया और आनन्द–युत रखा दयानन्द नाम॥

'मूल' से 'शुद्ध चैतन्य' बने, अब कहलाये हैं 'दयानन्द।'
आत्मिक कल्याण सेतु चढ़कर निश्चय काटेंगे विश्व–फन्द॥
है योग मार्ग अत्यन्त कठिन, यह खांड़े की पैनी धारा।
व्रत को सनिष्ठ मैं पूर्ण करूँ, लग जाय चहे जीवन सारा॥
गुरु चरणों में नत शिर होकर बहुज्ञान–हृदय आधान किया।
आगे जाने के आशय से उत दण्डीजी प्रस्थान किया॥

गुरु को जाते देखकर आइ झुकाया शीश।
योगी योगानन्द से जा अब ली आशीष॥

सीखी इनसे कुछ योग क्रिया पर मन का दीपक जला नहीं।
शांति की चाँदनी दूर रही, क्लान्ति का तमस् भी टला नहीं॥
'घिन्नाड़ ग्राम में एक महां विद्वान् शास्त्री रहते हैं।'
सुनकर उनके ढिंग जाकर ये शास्त्रलोचन रत होते हैं॥
कुछ दिन व्याकरण पढ़ा इनसे वह अच्छी तरह पढ़ाते हैं।
फिर भी अपूर्णता ज्ञात हुई, 'चाणोद' ओर पुनि आते हैं॥
यहाँ राजगुरू विद्वान् एक, वहाँ वेदाध्ययन किया जारी।
विद्या का कोष अपार मिले, उत्कण्ठा उर में थी भारी॥

–(शेष अगले अंक में)

पृष्ठ सं. 13 का शेष--
प्रकार का स्वार्थ वास्तव में स्वार्थ नहीं, उलटा अपना ही घातक होता है।

अतएव मनुष्य को अपनी रक्षा करने के लिए यह जरूरी है कि वह कभी बदमाशों का साथ न दे, बल्कि जहाँ तक हो सके उनका दमन करता रहे और किसी के विरुद्ध बदमाशी करने का उनका हौसला न बढ़ने दे। ऐसा करने से उसका स्वार्थ भी सध सकता है और उसकी रक्षा भी हो सकती है। परन्तु बदमाशों की रियायत या तरफदारी करने से उसका स्वार्थ बिगड़ता है और सभी को कभी न कभी इन बदमाशों के हाथ से नुकसान उठाना पड़ता है। हाँ, अगर हो सके तो इन बदमाशों को कुमार्ग से हटाकर सुमार्ग पर लाने की, काम धंधा सिखाने की नीतिवान् बनाने की कोशिश अवश्य करनी चाहिए। प्रेम से या भय से, दमननीति से या उपदेश द्वारा, जिस तरह हो सके उनको बुरे कामों से विरत करके मनुष्य बनाना चाहिए और मनुष्य मात्र की कुशल-क्षेम का प्रयत्न करते हुए ही जीवन व्यतीत करना चाहिए। ऐसा जीवन ही आनन्द का जीवन कहा जा सकता है। केवल अपना आनन्द चाहने और दूसरों के आनन्द की परवाह न करने में किसी प्रकार आनन्द नहीं मिल सकता है उससे तो उलटा घोर दुःख में फँसना पड़ता है। ❁❁❁

महापुरुषों की जयन्ती

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र	**5 अप्रैल**
महावीर स्वामी	**9 अप्रैल**
महावीर हनुमान	**11 अप्रैल**
कस्तूरबा गांधी	**11 अप्रैल**
बाबा साहेब अम्बेडकर	**14 अप्रैल**
डॉ0 हेडगेवार	**14 अप्रैल**
गुरु तेगबहादुर	**16 अप्रैल**
महात्मा हंसराज	**19 अप्रैल**
महात्मा ज्योतिवा फुले	**23 अप्रैल**
परशुराम	**28 अप्रैल**
छत्रपति शिवाजी	**28 अप्रैल**
सूरदास	**30 अप्रैल**

महापुरुषों की पुण्यतिथि

मंगल पाण्डे	**8 अप्रैल**
वीर खुदीराम	**12 अप्रैल**
डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन	**17 अप्रैल**
तात्या टोपे	**18 अप्रैल**

1 अप्रैल	**विश्व आरोग्य दिवस**
13 अप्रैल	**जलियाँवाला बाग**
14 अप्रैल	**गुड फ्राइडे**
19 अप्रैल	**वैज्ञानिक आर्यभट्ट**

(प्रथम उपग्रह भारत ने छोड़ा 1975)

गिरकर उठो फिर उठो

मनुष्य सहस्र बार नीचे गिर सकता है, पर उसे सहस्र बार ही ऊँचे उठने का प्रयत्न करना चाहिए। जहाँ से वह गिरा था, वहाँ से अधिक ऊँचा उठने का हर बार प्रयत्न करना चाहिए। पूर्णता प्राप्त करने का यही यथार्थ साधन है।

प्रेम-बन्धन

रचियताः कवि केशवानन्द मुकुटधर

प्रेम ! तेरा साथ जो होता न जग में प्रति घड़ी।
किस तरह तो सहन करते-यातना इतनी कड़ी?
'है अलभ्य पदार्थ तू ही सृष्टि में' यह जान कर।
मान करते हैं सभी तब पूज्यता पहचान कर॥

दे रहा है तू हमें, शिक्षा अनोखी नित नई।
जो अभी भावेश! हम से है नहीं जानी गई॥
तब दयामय दृष्टि से हम जन्म से पाले गये।
मोदद मां की मनोहर गोद में डाले गये॥

पूज्य पति, पत्नी, पिता, सुत, शिष्य, गुरु, इनकी कथा।
किस तरह वर्णन करें, जो प्रेम-मय है सर्वथा॥
बाल वृद्ध युवा रँगे हैं, प्रेम ही के रंग में।
दिन बिताते हर्ष से हैं, प्रियवरों के संग में॥

प्रेम ही से हैं लता-तरु नित्य फलते फूलते।
मत्त गज की भाँति, प्यारे भाव से हैं झूलते॥
विहग वर गाते मनोहर गीत मधुमय-प्रेम से।
विहरते स्वच्छन्द पशुगण भी अभय हो क्षेम से॥

भ्रमर क्षण क्षण भ्रमण कर क्यों फूल फूलों पर रहा।
सोचिये ! "गुण गुण" अनुक्षण शब्द क्या है कर रहा॥
मित्र ! आश्चर्यित न हो, यह और कुछ करता नहीं।
प्रेम के गुण-गान में है, धीर बस धरता नहीं॥

वह रहीं नदियाँ अनेकों सतत मिल जुल मोद में।
प्रेम से है नीर-निधि लेता उन्हें निज गोद में॥
प्रेम से उत्तुंग गिरिमाला कहीं नभ चूमती।
यह विषाद पृथ्वी अहा? रवि के चतुर्दिक घूमती॥

-शेष पृष्ठ सं. 26 पर

स्वार्थ और परसंताप

लेखकः हनुमानप्रसाद शर्मा

एक वैश्य जिनका नाम लाला स्वार्थीमल था, फसाद नामक ग्राम में रहा करते थे। लाला स्वार्थीमल 'यथा नाम तथा गुण' ही थे। इनकी एक कपड़े की दुकान बीच बाजार में थी। इनका सदैव यही ख्याल रहा करता था कि यदि किसी का भला हो तो मेरा नाम हो और मेरा कपड़ा बिके। इनका काम यह था कि प्रातःकाल से जाकर दुकान पर विराज जाते और हाथ में एक माला ले 'राधेश्याम राधेश्याम' जपा करते थे। जब देखते कि ग्राहक लोग जा रहे हैं तो बड़े उच्च स्वर से 'राधेश्याम' का महामंत्र उच्चारण करते जिससे साधारण ही ग्राहकों की दृष्टि लाला स्वार्थीमल की ओर जाती थी। जिस समय ग्राहकों की दृष्टि इनकी ओर पड़ती तो ये हाथ उठा अँगुलियों के संकेत से ग्राहकों को बुला लिया करते थे। जब ग्राहक पास आते तो ये पूछा करते कि-''कहाँ चले?'' जो वे उत्तर देते-''कपड़ा लेने।'' तब स्वार्थीमल कहते कि-''लीजिये, यह तो आपके घर की दुकान है और बाजार भर में तुम्हें ऐसा सस्ता कपड़ा नहीं मिल सकता।'' इस प्रकार ये ग्राहकों को मूड़ते और जो ग्राहक दूसरी दुकानों से कपड़ा लेकर इनकी दुकान के सामने से निकला करते तो भी ये अपने महामंत्र-'राधेश्याम' को उच्च स्वर से उच्चारण करते। जब उनकी दृष्टि इनकी ओर पड़ती तो संकेत से ग्राहकों को बुला पूछते थे-''यह कपड़ा कितने गज लाये?'' जब ग्राहक उत्तर देते कि इतने गज। तब लाला स्वार्थीमल बुरा मुँह बना विचकाते थे। तब ग्राहक प्रश्न करते कि -''लालाजी क्या है?'' तो स्वार्थीमल उत्तर देते कि-''भाई, तुम्हारी रुचि कि तुम यह कपड़ा 50) रुपये गज ले आये। हमारे यहाँ से आप यह 20) रुपये में ले जाइये।'' कपड़ा चाहे 50) रुपये गज का हो, पर लाला स्वार्थीमल की यह युक्ति थी कि एक आध बार घाटा खाकर भी ग्राहक अपना बना लिया करते थे। इस प्रकार लाला स्वार्थीमल बड़े धनाढय हो गये। पर आप लोगों को याद रहे कि धर्मशास्त्र में लिखा है-

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दश वर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्तेतु षोडशे वर्षे समूलं च विनश्यति।।

अधर्म से जोड़ा हुआ धन कभी ठहरता नहीं। पापों की पूंजी कभी किसी को नहीं पचती है। अतः लाला स्वार्थीमल के यहाँ कुछ तो चोरी हुई, कुछ राजा ने डाँड़ लिया, कुछ पुलिस ने हाथ साफ किये, रहा रहाया अग्नि ने स्वाहा कर दिया। अन्त में यह दशा हुई कि लाला स्वार्थीमल दो दो पैसे की मजदूरी करने लगे। परन्तु लाला स्वार्थीमलजी 'राधाकृष्ण' के उपासक तो थे ही, एक बार राधाकृष्णजी प्रसन्न होकर बोले कि-''लाला स्वार्थीमल, माँगो तुम जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो।'' लाला स्वार्थीमल माँगनेवाले तो यह थे कि-'महाराज हम अपने पड़ौसियों से सदैव दूने रहें।'' पर माँग बैठे यह कि-''हम से परोसी सदैव दूने रहें।'' राधाकृष्ण ने स्वार्थीमल जी को एक घंटा देकर कहा कि-''जब जब तुम्हें जिस चीज की आवश्यकता

पड़े, यह घंटा आपको सम्पूर्ण पदार्थ देगा और जितनी चीज तुम्हें देगा उससे दूनी पड़ोसियों को।'' जब लाला स्वार्थीमल घंटा ले रास्ते में आये तो ख्याल हुआ-''हाय! हम राधेश्याम से क्या माँग आये कि पड़ोसी हमसे सदैव दूने रहें, खैर जो कुछ हुआ। लेकिन जब हम घंटा ही न बजायेंगे, तो पड़ोसी कैसे दूने होंगे। चाहे हम जो दो दो पैसे की मजदूरी करते थे वही करते रहें, पर पड़ोसी कैसे दूने हो जायँ?'' यह विचार घंटा बाँध के कोठरी में बन्द कर दिया और अपनी स्त्री से कहा कि-''देख हम तो परदेश नौकरी के लिए जाते हैं पर तू कभी इस घंटे को न खोलना।'' जब लाला स्वार्थीमल परदेश चले गये और लालाजी के यहाँ एक दिन खाने को कुछ न रहा, स्त्री को इस भाँति दो व्रत हुए तो तीसरे दिन स्त्री ने सोचा कि और तो मेरे यहाँ कुछ है ही नहीं, हो न हो आज जो यह घंटा पड़ा हुआ है इसे ही बेच लावें तो दो चार आने पैसे मिल जाँयेगें जिससे एक आध दिन का निर्वाह होगा, फिर देखा जायगा। इस ख्याल को लेकर स्त्री ने घंटा खोला तो घंटा बज गया, बस घंटा के बजते ही 40) रुपये इसे मिल गये और 80-80 रुपये पड़ोसियों को मिले। इस प्रकार जब स्त्री को दो चार दिन पैसे मिलते रहे तो उसने समझ लिया कि यह घंटे में ही गुण है, अतः स्त्री पांचवें दिन घंटा ले बैठी और बोली कि ''घंटेश्वर आज हमको 10 ग्राम सोना मिल जाय।'' दस ग्राम इसे मिले, बीस-बीस ग्राम पड़ोसियों को मिला। इसने कहा-''या घंटेश्वर, हमारा तिखण्डा मकान बन जाय।'' इसका तिखण्डा और पड़ोसियों के सतखण्डे बन गये। इसने कहा-''या घंटेश्वर, हमारे यहाँ इतनी फौज हो जाय।'' जितनी इसके यहाँ हुई, उस से दूनी पड़ोसियों के यहाँ हो गई। इसने कहा-''या घंटेश्वर, हमारे दरवाजे इतने इतने घोड़े हाथी हो जाँय।'' जितने इसके यहाँ हुए उसके दूने पड़ोसियों के यहाँ हुए। अब स्त्री ने सोचा कि जब घर में इतना ऐश्वर्य है तो मेरा पति क्यों दो दो पैसे की मजदूरी करे। अतः पति को पत्री लिखी कि-''स्वामिन्, आप के घर में सब कुछ मौजूद है, आप नौकरी छोड़कर चले आइये।'' लाला स्वार्थीमल को पत्री पहुँचते ही यह ख्याल हुआ कि जान पड़ता है कि इसने घंटा बजा दिया, नहीं तो इतना ऐश्वर्य इतने दिन में कहाँ से आ गया? क्योंकि अपने घर की दशा लाला साहब भली भांति जानते थे, परन्तु सोचा कि चलकर देखें क्या है। जब घर आये तो देखा कि हमारा तिखण्डा मकान बना है और पड़ोसियों का सतखण्डा, यह देख पत्थर में अपना सिर दे मारा और कहा-''हा! हमारे देखते देखते पड़ोसी दूने।'' इसी भाँति अपने दस ग्राम और पड़ोसियों के बीस-बीस देखकर फिर सिर पटकने लगे। इसी भाँति हाथी, घोड़ा, फौज आदि पदार्थ पड़ोसियों के दूने देख स्वार्थीमल सिर पीटते रहे और स्त्री का बड़ा फजीता किया कि ''तूने घंटा क्यों बजाया?'' अन्त में अब लाला स्वार्थीमल इस विचार में पड़े कि इन पड़ोसियों का सत्यानाश किस प्रकार हो? सोचते-सोचते कुछ लाला स्वार्थीमल के समझ में आ गया और लाला स्वार्थीमल घंटा लेकर बैठे और बोले कि-''या घंटेश्वर, हमारी एक आँख फूट जाय।'' एक इनकी फूटी, पड़ोसियों की दोनों गई। इन्होंने कहा-''या घंटेश्वर, हमारा एक कान बहरा हुआ, पड़ोसियों के दोनों। इन्होंने कहा-''या घंटेश्वर, हमारी एक टाँग टूट जाय।'' एक टूटी इनकी, दोनों गई पड़ोसियों की। इन्होंने कहा-''या घंटेश्वर, एक कुआँ तो हमारे दरवाजे खुद जाय।'' एक

खुदा इनके दरवाजे, दो दो पड़ोसियों के दरवाजे खुद गये। अब ज्योंही प्रातःकाल हुआ तो लाला स्वार्थीमल एक काठ की टाँग तथा पत्थर की आँख लगवा कर चले कि पड़ोसियों की दशा तो देख आवें, कैसे साले आनन्द कर रहे थे। पड़ोसी विचारे अन्धे ब्रहरे, लँगड़े घसिलते हुए जो दरवाजे पाखाने आदि को निकलते तो कुओं में जा टुभ्भ टुभ्भ गिरते थे। यह देख स्वार्थीमल की छाती ठंडी हुई। सच है, किसी जगह का वृत्तान्त है कि–

कस्त्वं भद्र खले स्वरोहमिह किं घोरे वने स्थीयते।
शार्दूलादिभिरेव हिंस्रपशुभिः खाद्योऽहमित्याशया।।
कस्मात् कष्टमिदं त्वया व्यवसितं मद्येह मांसाशिनः।
इत्युत्पन्न विकल्प जल्प भुखरैः तेघ्नन्त सर्वान् इति।।

❉❉❉

पृष्ठ सं. 23 का शेष–

ग्रीष्म, वर्षा, शरद, षड्‌ऋतु समय के अनुकूल हैं।
एक आती, एक जाती, दिव्य शोभामूल हैं॥
ठण्ड पड़ती, ताप बढ़ता जल बरसता क्यों कहो?
मुख्य इनका हेतु है "सत्प्रेम" ही निश्चय अहो॥

'प्रेम' से जग में 'प्रभा'–कर नित्य आता दृष्टि है।
चन्द्रमा निज किरण–द्वारा अमृत करता वृष्टि है॥
ग्रह–उपग्रह–राशि–गण है सृष्टि यह सारी तथा।
'प्रेम' से निज निज प्रकृति–पथ पर समस्थित सर्वथा॥

यों चराचर जीव सब हैं "प्रेम–बन्धन" में बँधे।
जन्म ही से प्रेम के दृढ़ पाश में जाते फँदे॥
भाइयो ! संसार में सत्प्रेम क्या ही रत्न है।
सन्त जन सन्तत इसी की प्राप्ति–हित कृत–यत्न है॥

❉❉❉

अनमोल वचन

❉ विवेक के प्रकाश को ही जब किसी भाषा–विशेष या लिपि–विशेष में आबद्ध कर देते हैं, तो वह 'ग्रंथ' कहलाता है और जब उसी विवेक के प्रकाश को किसी के जीवन में देखते हैं तो उसे 'सन्त' कहने लगते हैं।

❉ भलाई दूसरों की करने से अपनी होती है, और सुधार अपना करने से दूसरों का होता है।

श्री अरविन्द और आर्यसमाज

लेखकः पं० अभयदेव

वेद

आर्यसमाज की सबसे मुख्य वस्तु वेद है। यदि आर्यसमाज के कार्यक्रमों में से वेद को हटा दिया जाय तो आर्यसमाज में कुछ भी काम की चीज नहीं बच जायगी। उस वेद के विषय में श्री अरविन्द ने जो कुछ किया है, जो कुछ भी कहा है–खेद है कि उसे बहुत कम लोग जानते हैं। परन्तु वह हमें अवश्य जानना चाहिए।

श्री अरविन्द ने योगसाधन के लिये पाँडिचेरी में पहुँचकर अपने नये प्रकार का जीवन स्वीकार करके जो एक मासिक पत्रिका इंगलिश में निकालनी प्रारम्भ की थी, उसका नाम उन्होंने रखा था 'आर्य'। यद्यपि वह अंग्रेजी की पत्रिका थी तो भी उसके ऊपर 'आर्य' शब्द देवनागरी अक्षरों में अंकित होता था। वैसे तो यह भी हमारे लिये महत्व की बात है कि श्री अरविन्द ने उस पत्रिका का नाम 'आर्य' पसन्द किया। परन्तु इस पर तो मैं आगे कहूँगा। यहाँ तो यह कहना है कि उस पत्रिका में प्रारम्भ से ही श्री अरविन्द ने जो दो लेखमालाएँ प्रारम्भ की थीं, उनमें The Life Devine. (दिव्य जीवन) की लेखमाला के अतिरिक्त दूसरी लेखमाला का नाम The Secret of the Veda.- अर्थात् 'वेद रहस्य' थी। उनकी यह 'वेद रहस्य' नामक लेखमाला बहुत ही अद्‌भुत है। उसमें उन्होंने भी बताया है कि वेद का असली प्रतिपाद्य विषय क्या है। उदाहरण के लिये 'वेद–रहस्य' पुस्तक के कुछ वचन निम्न हैं, जिनसे इसका कुछ आभास मिल सकेगा कि श्री अरविन्द के 'वेद–रहस्य' में कैसी बातें हैं–

(वेद) दिव्य वाणी है, जो कम्पन करती हुई असीम में से निकलकर उस मनुष्य के अन्त:करण में पहुंची, जिसने पहले से ही अपने आपको अपौरुषेय ज्ञान का पात्र बना रखा था।

अपने गूढ़ अर्थ में भी जैसे कि अपने साधारण अर्थ में यह (वेद) कर्मों की पुस्तक है, आभ्यतन्तर और बाह्य यज्ञ की पुस्तक है, यह है आत्मा की संग्राम और विजय की सूक्ति, जबकि यह विचार और अनुभूति के उन स्तरों को खोजकर पा लेता है और उनमें आरोहण करता है जो कि भौतिक अथवा पाशविक मनुष्य से दुष्प्राप्य हैं।

पूर्णता की प्राप्ति के लिये संघर्ष करने वाले आर्य के हाथ में वह (वेद मन्त्र) शस्त्र का काम देता था।

'दयानन्द ने ऋषियों के भाषा सम्बन्धी रहस्य का मूल सूत्र हमें पकड़ा दिया है और वैदिक धर्म के एक केन्द्रभूत विचार (अनेक देव एक परम देव में आ जाते हैं) पर फिर से बल दिया है।

मैंने यह देखा कि वेद के मन्त्र एक स्पष्ट और ठीक प्रकाश के साथ मेरी अपनी आध्यात्मिक

अनुभूतियों को प्रकाशित करते हैं।

इस परिणाम पर पहुँचने में, सौभाग्यवश मैंने जो सायण के भाष्य को पहले नहीं पढ़ा था, उसने मेरी बहुत मदद की।

तब यह धर्म पुस्तक वेद ऐसी प्रतीत होने लग गई कि यह अत्यन्त बहुमूल्य विचाररूपी सुवर्ण की एक स्थिर रेखा को अपने अन्दर रखती है और आध्यात्मिक अनुभूति इसके अंश-अंश में चमकती हुई प्रवाहित हो रही है।

'वेद के प्रतीकवाद का आधार यह है कि मनुष्य का जीवन एक यज्ञ है, एक यात्रा है, एक युद्धक्षेत्र है।'

'दिव्य जीवन' पुस्तक पर वेद वचन

एक दूसरी बात की तरफ आपका ध्यान खींचता हूँ। आर्य पत्रिका की जिसे दूसरी प्रसिद्ध लेखमाला का मैंने उल्लेख किया है The Life Devine उस लेखमाला के भी प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में श्री अरविन्द ने कोई न कोई वेद या उपनिषद् का वचन उद्धृत किया है।

अभी अमेरिका ने The Life Devine का नया और सस्ता संस्करण निकाला है। ज्यों-ज्यों श्री अरविन्द की इस 'दिव्य जीवन' सम्बन्धी पुस्तक का प्रचार होगा तो साथ ही वेद का भी प्रचार होगा। The Life Devine के प्रत्येक अध्याय पर जो वेद मन्त्र आदि लिखे हुए हैं, यह कहा जा सकता है कि वह अध्याय उसी वेदवचन की व्याख्या है। दुनिया भर के विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत की हुई वेदवचनों की व्याख्या है।

श्री अरविन्द आश्रम में वेदों को किस महत्व की दृष्टि से देखा जाता है, इसका एक दृष्टान्त देता हूँ। जब 1943 में देहली में श्री अरविन्द की अनुमति से श्री अरविन्द निकेतन नाम से संस्था खोली गई और वहां पर श्री अरविन्द के साहित्य के वाचनालय का प्रारम्भ किया गया, तब कुछ समय बाद हमारे मन में आया कि इस वाचनालय में कुछ और धार्मिक साहित्य भी रखा जाय तो कैसा हो, पर इस विषय में जब श्री अरविन्द से पूछा गया तो उनका उत्तर श्री नलिनीकान्त जी गुप्त मन्त्री द्वारा यह प्राप्त हुआ-हम वहाँ वेद और उपनिषद् रख सकते हैं, इसके अतिरिक्त और कोई धार्मिक साहित्य रखा जाना उन्होंने पसन्द नहीं किया। ❁❁❁

पूरी ही जिन्दगी गई

एक बोध कथा है एक शास्त्रों के ज्ञाता पण्डित जी नौका से नदी के पार जा रहे थे। मल्लाह से उन्होंने पूछना शुरू किया, क्या तुमने वेद पढ़े हैं? उपनिषदों का अध्ययन किया है? आदि-आदि। मल्लाह बेचारे ने कहा कि उसने कुछ भी नहीं पढ़ा है। पण्डितजी ने कहा कि तुम्हारी तो आधी जिन्दगी बेकार गई। थोड़ी ही देर में तूफान आ गया, नौका डगमग करने लगी। मल्लाह ने पण्डितजी से कहा, नौका डूबने वाली है, क्या आपने तैरना सीखा है? पण्डितजी ने उत्तर दिया, नहीं। मल्लाह ने कहा, तब तो आपकी पूरी जिन्दगी बेकार गई।

देश का काम

संग्रहकर्त्ताः जगन्नाथप्रसाद गुप्त

हमारा देश, हमारी जाति हमें अवसर का देकर हेम,
सुनो, कह रही–"नहीं मालूम तुम्हारे कर कैसे हैं क्षेम॥"

❄ ❄ ❄

तबे उर या न तबे, हम लोग चलाये चलें हथौड़े हाथ,
स्वर्ण तो है; यत्नों के यन्त्र सुगमता से दे देंगे साथ।
क्षार कर दूर करेंगे उसे 'सत्य' से स्वच्छ बढ़ेगा दाम,
हार माता के पद वह चढ़ा, कहेंगे–हुआ देश का काम॥ 1॥

हृदय में भरकर ऊँचे भाव, खोलकर विमल बुद्धि का कोश,
नसों में भर माता का प्रेम, रक्त में देश–भक्ति का जोश।
शक्ति भर कर अंगों में सर्वं, बदन पर ला वीरोचित रोष,
सजा सब साज धार हथियार, सँभाले अपना चँचल होश।
एक 'अभिलाषा' पर रख लक्ष्य, 'भाग्य का भूत' भूल हे राम !
चढ़ो रिपु–दल पर शीघ्र ससैन्य, विजय कर करो देश का काम॥ 2॥

दुःख–घन घिरने दो सर्वत्र, हानि क्या है, है लाभ महान,
धार कर फिर तो विद्युत–रूप करेंगे दुखित देश का त्राण।
चखा देंगे रिपुदल को स्वाद कर्म का उनके कर प्रतिशोध,
विजय कर दिखला देंगे आज कि अब तक कैसे थे निर्बोध।
मथन कर भूमि, व्योम, पाताल किसी भी भाँति करेंगे नाम,
रंगेंगे इतिहासों के पृष्ट पूर्ण कर प्रिय स्वदेश का काम॥ 3॥

याद कर माता के उपकार, सदा के लिये अलौकिक प्यार,
सभी जड़–चेतन में हो तीव्र ही रहा नूतन–रस संचार।
उमग कर हृदय बढ़ाता हाथ, देह भी हो जाती सस्फूर्ति,
रक्त बलवला चाहता शीघ्र किया लोहित माता की मूर्ति।
सपूतो! कहो "मातृ–पद छोड़ नहीं अब होगा देश गुलाम।"
अजी, वह काल गया अब बीत–रहेगा रूका देश का काम॥ 4॥

नये हम हैं, है भक्ति नवीन, भरी है हममें शक्ति नवीन,
और तो क्या नवीनता आप अभी तक है सब भाँति नवीन।
हमारी "आवश्यकता" आज सदी भर से है बनी नवीन,
किन्तु केवल गुण गौरव खानि हमारी माता है प्राचीन।
ठीक है-नूतनता प्राचीन-वस्तु में बसे समझ निज धाम,
अतः हे युवको! सौंपा गया हमारे करों देश का काम॥ 5॥

छोड़ हमको फिर ऐसा कौन? जहाँ तक पहुँचे यह सन्देश,
लगा टक किसके मुख को आज देखता उत्कण्ठा से देश?
वृद्ध तो वृद्ध युवा युग-दास, बने हैं बालक तो बस बाल,
न ये कर सकते हैं स्वाधीन लड़ा कर जान काल की चाल।
हमी हैं एक मात्र इस योग्य, जिसे "करना" ही है विश्राम,
अहह ! दिल भर आया हे देश, करेंगे हमी तुम्हारा काम॥ 6॥

"हाँ है काम?" तुम्हारे पास, "नही!" हाँ हाँ देखो दे ध्यान,
"ठीक, मिल गया!" करोमत देर "अहह! न्यौछावर है यह प्राण।"
का पुरुष सुन ये वीरालाप, रहा देखो निज दशा निहार,
अरे पापिष्ठ ! उठा सिर देख कि कैसे सुधरा है संसार।
सँभल कर ग्रहण करो सन्मार्ग धरो स्वतुरग का स्वयं लगाम,
प्राप्त कर आवश्यक गुण, ग्राम, सपूतो ! करो ेश का काम॥ 7॥

❀❀❀

मानवता सेवा सर्वोपरि है

एक गुरुकुल के दो शिष्य अपने गुरु के साथ नदी स्नान को गए। स्नान के उपरान्त दोनों ध्यान लगाकर बैठ गए। अचानक उन्हें एक डूबते बालक की आवाज सुनाई पड़ी। सुनते ही एक शिष्य ध्यान छोड़कर नदी में कूद गया और डूबते बालक को बचा ले आया, परन्तु दूसरा शिष्य ध्यान ही करता रहा। उनके गुरु सारी घटना के साक्षी थे। उन्होंने पूछा-"वत्स ! क्या तुमने उस बालक की पुकार नहीं सुनी थी?" वह शिष्य बोला- "गुरुदेव ! सुनी तो थी, परन्तु ध्यान मध्य में कैसे छोड़ सकता था? "छोड़ने पर क्या मैं पाप का भागी नहीं होता?" गुरुदेव बोले-"दुर्भाग्य है वत्स कि इतने वर्ष धर्मशास्त्रों का अध्ययन करने के बाद भी तुम धर्म का सार नहीं समझ पाए। धर्म का सार थोथे कर्मकाण्ड में नहीं, बल्कि पीड़ित मानवता की सेवा करने में है। सच्चे धर्म का पालन तो दूसरे शिष्य ने किया है।

मनोबल द्वारा सर्व रोग निवारण और अमृतत्व का लाभ

लेखक : पं. शिवकुमार शास्त्री

एक जगह पर कई प्रकार के वृक्ष हैं, जैसे–आम, जामुन,कटहल और पीपल इत्यादि। इन पर कुछ विचार करना है। इनकी उत्पत्ति और स्थिति पर विचार कीजिए। इनके छोटे–2 बीज खेत में डाल दिए गए होंगे। इनमें से जो बीज अच्छे और मरे हुए नहीं थे वे बढ़ने लगे और धीरे–2 इतने बड़े और मोटे वृक्ष हो गए। सोचना यह है कि ये सब बीज एक ही प्रकार की मिट्टी, हवा और पानी से अपनी–2 खुराक ग्रहण किये। पर बढ़ने पर एक ही प्रकार के नहीं हुए, इसका क्या कारण? जामुन के बीज ने जिस खुराक को जिस जगह से ग्रहण किया पर आम और जामुन दोनों दो तरह के हुए, इसका कारण क्या है? इसका कारण है दोनों वृक्षों की विभिन्न चेतनता।

मिट्टी या अनेक धातुओं के चार अचेतन घड़ों में उसी जगह की मिट्टी उठाकर अलग–2 चारों में भर दीजिए और फिर चार रोज के लिए उन्हें योंही छोड़ दीजिए। चार रोज क्या महीनों बाद देखिए विभिन्न घड़ों के इन चारों घड़ों की मिट्टी में भिन्नता नहीं आवेगी। ऐसा क्यों? इसलिए किये घड़े जड़ और अचेतन हैं। इन्होंने मिट्टी को पचाकर अपना रूप नहीं दिया। पर यही मिट्टी जब चार किस्म के वृक्षों के भीतर जाती है तो इसमें विभिन्नता आ जाती है। वही हवा, वही जल और वही मिट्टी विभिन्न वृक्षों में जाकर विभिन्न रूप धारण करती है। इसका कारण यह है कि चेतन अपने भाव के अनुसार तमाम चीजों को बनाता रहता है। जड़ में यह शक्ति नहीं होती। वृक्ष भी चेतन है। वे जब तक सूखकर जीव हीन नहीं हो जाते तब तक इसी मिट्टी और जल को ग्रहण कर अपने रूप और भाव को बदलते रहते हैं।

चेतन क्या वस्तु है? चेतनता और मन दोनों एक ही वस्तु हैं। चेतनता और मन एक चीज के दो नाम हैं। चेतनता, मन, जीवनी शक्ति सब एक ही हैं। जीवनी शक्ति या मन अपने भाव, विश्वास और संकल्प के अनुसार संसार के तमाम चीजों को बदल सकता है यही मनोबल का गुप्त भेद वा रहस्य है। इसी मनोबल द्वारा विभिन्न वृक्षों में एक ही प्रकार की मिट्टी और जल जाकर विभिन्न रूप और गुण को प्राप्त होता है।

मनुष्य को ही लीजिए। एक ही प्रकार का भोजन विभिन्न प्रकार के मनुष्यों और प्राणियों में जाकर विभिन्न रूप को धारण करता है। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि मन में अपार शक्ति है। मन आपके शरीर के तमाम अणुओं को आपके भाव तथा विश्वास के अनुसार बना देता है। यद्यपि भावना के अनुसार रूपान्तर धीरे–2 होता है मगर होता है जरूर। अतः यदि आप नित्य यही भावना करें कि हम शरीर से अमर और नीरोग हैं तो धीरे–2 आपका शरीर ऐसा हो जायगा कि आप सचमुच नीरोग, स्वस्थ और अमर हो जायेंगे। आपका मन आपके विश्वास के अनुसार आपके शरीर के तमाम अणुओं को धीरे–2

ऐसा बना डालेगा कि आप मृत्यु पाश से छूट जायेंगे और आपके ऊपर मृत्यु का कुछ वश न चल सकेगा।

विश्वास की दृढ़ता में कमी होने से कुछ अधिक देरी लगती है। पर भावना शरीर के तमाम अणुओं पर बिना प्रभाव डाले रह नहीं सकती। मनोबल एक विचित्र बल है। ज्यों ही आप कहेंगे कि हमारा अमुक रोग दूर हो जाय त्यों ही उस रोग के अणु बदलने लगेंगे और धीरे-2 वह आपका रोग दूर हो जायगा। इसी तरह ज्यों ही आप अपने मन में पूर्ण विश्वास के साथ कहते हैं कि हम अमर हैं त्यों ही आप अमृतत्व के नजदीक पहुँच कर मृत्यु के बन्धन को तोड़ डालते हैं। मन में ऐसी शक्ति है कि उसमें अमृतत्व की भावना आते ही शरीर के भीतर एक बहुत बड़ा परिवर्तन अत्यन्त शीघ्रता के साथ मगर अत्यन्त शान्ति पूर्वक होने लगता है। शरीर में एक हलचल सा पैदा हो जाता है। शरीर के एक-2 अणु की गति मृत्यु की ओर से मुड़कर अमृतत्व की ओर हो जाती है।

रोग या मृत्यु का कारण केवल अज्ञान है। रोग या मृत्यु सिवाय भ्रम के और कुछ नहीं है। भ्रम यह है कि लोग जानते हैं कि मृत्यु और रोग का होना आवश्यक है। लोग यह नहीं जानते कि यह विश्वास करते ही कि हम अमर और नीरोग है अमर और निरोग हो जाते हैं। यह भेद या सच्चा ज्ञान जब तक छिपा रहेगा तब तक मनुष्य रोग और मृत्यु के वश में रहेगा। सच्चा ज्ञान मनुष्य को बन्धनों से मुक्त कर पूर्ण स्वतन्त्र कर देता है।

शरीर पर तो मन का जो प्रभाव है वह किसी से छिपा नहीं है। देखिए जब हम हाथ को सिकोड़ने कि इच्छा करते हैं तो वह उसी वक्त सिकुड़ जाता है। उठाने की इच्छा होते ही वह उठता और फैलाने की इच्छा पर तुरन्त फैल जाता है। क्या हाथ के भीतर और उठाने के लिए कोई और हाथ है जो उसे उठाना है? कभी नहीं। केवल इच्छा शक्ति ही हाथ को क्या शरीर मात्र को उठाती बैठाती और चलाती है। इच्छा होते ही शरीर का प्रत्येक यन्त्र के समान नाचने लगता है। शरीर में हर प्रकार की गति इच्छा होते ही उसी वक्त उत्पन्न हो जाती है। इस शरीर के प्रत्येक यन्त्र, प्रत्येक अंग प्रत्येक अणु को चलाने वाला केवल मन की इच्छा शक्ति है।

मन को प्रत्येक परिवर्तन शरीर के ऊपर बिना प्रभाव डाले नहीं रहता। मन में क्रोध आते ही आंखें लाल लाल हो जाती हैं। मन में भय का संचार होते ही सारा शरीर थर्राने और कांपने लगता है। कभी-2 अधिक डर जाने से असाध्य ज्वर चढ़ जाता है। क्रोध आने पर भी देखा गया है कि एक मनुष्य बैठा हुआ कुछ सोच रहा, सोचते वक्त उसके मन के हर्ष और विषाद का चिन्ह साफ-2 शरीर के ऊपर दिखलाई देता है। सोचते वक्त आखें घूमतीं, उंगुलियां दायें बायें जातीं और मुँह बड़बड़ाता है। कभी-2 मनुष्य कुछ सोचकर आप ही आप नाचने लगता है। मतलब यह है कि इस शरीर के भीतर मन में वह बल है जो शरीर के अंग-2 को नचा सकता है। मन के भीतर विचार के आते ही शरीर के भीतर उसके अनुसार क्रिया शुरू हो जाती है। अतः अमृतत्व और आरोग्यता की भावना आते ही मनुष्य अमर और नीरोग होने लगता और हो जाता है।

यदि आप विश्वास के साथ इच्छा करें कि हम अमर और निरोग हो जायं तो आपके विश्वास के साथ वही अणु भीतर जायंगे आपके शरीर को अमर बनादें। पानी और भोजन को भी वही दरकार होगी। यही नहीं किन्तु जैसे ऊंख का पौधा साधारण मिट्टी को भी अपने भीतर खींचकर चिनी बना लेता है उसी तरह आपका सच्चा विश्वास और मन इस साधारण मिट्टी और जल को भीतर ले जाकर उन्हें अमर और निर्विकार बना देगा और मन शरीर के प्रत्येक अणु को ऐसा कर देगा जिससे यह शरीर को अमर और निरोग रख सके।

जब मन के उतार और चढ़ाव का चिन्ह शरीर के चर्म पर प्रत्यक्ष देखा जाता है तो क्या कारण है कि मनुष्य केवल इच्छा शक्ति द्वारा सुन्दर, मनोहर और युवा नहीं हो जायगा? अवश्य होगा। सुन्दर, मनोहर, प्रभावशाली, बलवान और युवा बनने के लिए केवल मन से संकल्प करना होगा बस सब हो जायगा।

मन में जरा सा डर आने से शरीर के रोम-रोम खड़े हो जाते हैं। एक सैकेण्ड में मन शरीर के रोम-2 को तन देता है। इससे क्या यह नहीं साबित होता कि मन का शरीर के अवयव पर अधिकार है। जरा सा मन के बिगड़ने से पेट इतना बिगड़ जाता है कि मिलती मालूम होती, दस्त लगता और वमन होने लगता है। जो मन पेट के ऊपर इतना प्रभाव रखता है कि क्षण मात्र में विशूचिका उत्पन्न कर सकता है क्या वही मन पेट को ऐसा ठीक नहीं कर सकता कि शरीर के तमाम रोग मिट जायं और वह अमर हो जाय?

मेस्मेरिजम की सारी करामात मन से है। मेस्मरिजम द्वारा क्षण मात्र में जो रोग दूर किया जाता है वह इसी मन की करामात है। मन सब कुछ कर सकता है। मन आप का है वह आपसे अलग नहीं है। मन में और आप में कुछ भेद नहीं है। अतः आप सब कुछ छोड़कर अपने ऊपर भरोसा करें। आपकी आत्मा क्या आप स्वयं सर्वशक्तिमान और ईश्वर है। आपको अपनी शक्ति पर विश्वास न करने के कारण ही सारा दुःख उठाना पड़ रहा है।

मनुष्य इच्छा स्वरूप है और कुछ नहीं। अनेक इच्छाओं के समूह का ही नाम ही मनुष्य है। जैसे-2 उसकी इच्छा और विश्वास में परिवर्तन होता है वैसे-2 वह स्वयं बदलता जाता है। आत्मा या संसार का सच्चा ज्ञान या प्रकृति का सच्चा नियम यही है और बिना इस सच्चे ज्ञान के कोई मुक्त नहीं हो सकता। ज्ञान की वास्तविक बल है और बल ही मनुष्य को वह स्वतन्त्रता दे सकता है जिसमें अनन्य सुख आनन्द और शान्ति है। इस आनन्द और सुख को प्राप्त कर इस सच्चे ज्ञान द्वारा यही मनुष्य ही ईश्वरत्व को प्राप्त होता है।

-(शेष अगले अंक में)

हर समय शुभ ही शुभ

सुअवसर की प्रतीक्षा में न बैठे रहें। ज्योतिषी से मुहूर्त्त न पूछें। हर दिन और हर पल ही काम करने के लिए शुभ मानकर चलें।

ओ३म्

गुरूकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन (मथुरा) में प्रवेश प्रारम्भ

योगिराज भगवान श्रीकृष्ण की जन्मस्थली एवं युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती की दीक्षास्थली पवित्र ब्रजभूमि मथुरा में प्रखर राष्ट्रभक्त महाराज श्री महेन्द्रप्रताप द्वारा प्रदत्त सुविस्तृत भूखण्ड में स्थित श्रद्धेय नारायण स्वामी जी की तपस्थली गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन में प्रवेश प्रारम्भ हो चुके हैं। प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण होने के उपरान्त ही विद्यार्थी को कक्षा 6 एवं 7 में योग्यता अनुसार प्रवेश दिया जा सकता है अथवा जिस विद्यार्थी को अन्य विषयों के साथ-साथ अष्टाध्यायी न्यूनतम 4 अध्याय कण्ठस्थ होगी, वह विद्यार्थी प्रवेश परीक्षा के उत्तीर्ण होने पर कक्षा 8 में भी प्रवेश पा सकता है।

गुरुकुल में प्राच्य व्याकरण के साथ-साथ अन्य सभी विषयों का गहनता से अध्ययन कराया जाता है। अतः विद्यार्थी का मेधावी होना आवश्यक है, इसलिए अभिभावक मेधावी, सुधी विद्यार्थी को ही प्रवेशार्थ लायें।

गुरुकुलीय परिवेश पूर्णतः वैदिक संस्कारों से परिपूर्ण है, इसके साथ ही भोजन, आवास एवं अध्ययनादि की व्यवस्था भी अति उत्तम है, आर्यजन इसका लाभ उठाकर अपनी संतानों को शिक्षित, सक्षम, संस्कारवान् एवं चरित्रवान्, राष्ट्रभक्त तथा ऋषिभक्त बनाकर व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करें।

बालक ब्रह्मचर्य व्रतधारें, धर्म कर्म भरपूर करें।
ब्रह्म-विवेक-प्रकाश पसारें, मोह महातम दूर करें।।
युक्ति प्रमाण-तर्क पटुता से, भ्रम को चकनाचूर करें।
पन्थ न पकड़ें मतवालों के, साधु स्वभाव न क्रूर करें।।
सरल सुलक्षण संतानों को, संयमशील सुजान करो।
गुरुकुल पूजो वैदिक वीरो, विद्या बल धन दान करो।।

आचार्य स्वदेश
कुलाधिपति
चलभाषः 9456811519

आचार्य हरिप्रकाश
प्राचार्य
9457333425, 9837643458

में घोर अशान्ति है वैसे परिवार सब सम्पन्न है बच्चे अपनी-अपनी जगह व्यवस्थित हैं। न जाने क्यों मैं ही अशान्ति का जीवन जी रहा हूँ। भावावेश में आकर साधु बन गया हूँ। अनेकों सम्प्रदाओं में जाकर कथा भी सुनता हूँ और यथायोग्य साधना भी करता हूँ पर शान्ति प्राप्त नहीं हो रही है। उनकी बात को ध्यानपूर्वक सुनकर मैंने उनसे कहा कि आप क्या शान्ति के स्वरूप से परिचित हैं तब उन्होंने कहा कि मैंने तो आज तक इस विषय में सोचा ही नहीं। उनकी बात सुनकर हमें महाकवि शंकर का यह कवित्त स्मरण हो आया।

उपदेश अनेक सुने मन के रुचि के अनुसार सुधार चुके।
घर ध्यान यथाविधि मन्त्र जपें सब वेद व शास्त्र विचार चुके।
गुरु गौरव धार महन्त बने धन धाम कुटुम्ब विसार चुके।
कवि शंकर ज्ञान बिना न तरे चहुँ ओर फिर झख मार चुके।

निश्चित रूप से जब किसी व्यक्ति या वस्तु या भाव को यथार्थ स्वरूप का हमें ज्ञान नहीं होता है तब हमें उक्त अध्यापक की तरह निरुद्देश्य भटकना पड़ता है। ज्ञान के बिना किसी वस्तु का ध्यान होना असम्भव है इसी तरह प्रत्येक विषय के बारे में कहा जा सकता है।

वस्तुतः सर्वत्र व्यवस्था का नाम ही शान्ति है यदि हम अपने जीवन में शान्ति को चाहते हैं तो किसी प्रकार की अव्यवस्था अपने जीवन में न आने दें चाहे वो वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक या राष्ट्रिय हो हर प्रकार की अव्यवस्था व्यक्ति के जीवन में अशान्ति का कारण बनती है। यदि हम अपने जीवन में जिस रूप में भी जी रहे हैं व्यवस्थित रहेंगे तो अवश्य शान्ति प्राप्त करेंगे। मान लो कोई छात्र अपनी दिनचर्या को व्यवस्थित करके अध्ययन कार्य को व्यवस्थित ढंग से नहीं करता है तो निश्चित रूप से परीक्षा आने पर अनुतीर्ण होगा फिर अशान्त होकर के दुःखों का भागी होगा। यदि व्यर्थ की बातों से मन हटाकर अपने को विद्याध्ययन में व्यवस्थित करेगा तब अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होगा। सर्वत्र सम्मानित होगा और इस प्रताप से उसके अन्तःकरण में अप्रतिम शान्ति प्राप्त होगी इस दृष्टान्त से ही पाठक समझ गये होंगे कि शान्ति क्या है और कैसे मिल सकती है। इसीलिए पवित्र वेदों में भी शान्तिपाठ के माध्यम से भक्त को बतलाया गया है कि- **द्यौ शान्ति अन्तरिक्षं शान्ति पृथिवी शान्ति रापः शान्ति।**

अर्थात् वैदिक भक्त अपने चारों ओर सूर्य, चन्द्र, अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल, अग्नि, औषधि, वनस्पति आदि को व्यवस्थित देखता है सूर्य निश्चित समय पर निकल रहा है निश्चित समय पर छिप रहा है। औषधियां और वनस्पतियां ऋतु अनुकूल व्यवहार करके फल-फूल दे रहे हैं। भक्त केवल अपने को ही अव्यस्थित अर्थात् अशान्त पाता है। इसलिए करुणा पूर्ण हृदय से परमात्मा से प्रार्थना करता है कि हे प्रभु जो व्यवस्था तेरी सृष्टि में सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है। **सा मा शान्ति रेधि** वही व्यवस्था मेरे अन्दर भी स्थापित कर जिससे मैं भी शान्त को प्राप्त कर सकूं यही उपरोक्त रास्ता शान्ति को प्राप्त करने का है। अन्य कोई मार्ग नहीं है। शान्ति के अभिलाषी जन को तत्काल ही इस पथ का अवलम्बन करना चाहिए इसके लिए आवश्यक है कि हमें प्रतिपल इस बात का ध्यान रखें कि अव्यवस्था फैलाने वाले तत्व या विचार कहीं हमारे जीवन में तो प्रविष्ट नहीं हो रहे हैं। यदि ऐसा है तो कठोरता से उन्हें निकालकर बाहर करें। यदि मानव जीवन की सफलता है इस प्रकार का आचरण करने वाला व्यक्ति श्रेष्ठ कहलाता है। ऐसे व्यक्ति जहाँ रहेंगे वहां स्वर्ग जैसा वातावरण अपने आप उपस्थित हो जायेगा। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने ठीक ही लिखा है-

बना लो जहाँ हाँ वहीं स्वर्ग है।
नहीं स्वर्ग कोई धरा वर्ग है।
भलों के लिए तो यहीं स्वर्ग है।
बुरों को कहीं भी नहीं स्वर्ग है।
सुनो स्वर्ग क्या है सदाचार है।
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है।

❋❋❋

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (सजिल्द)	220.00	भ्रांति दर्शन	20.00
शुद्ध रामायण (अजिल्द)	170.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00
शंकर सर्वस्व	120.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	बाल मनुस्मृति	12.00
नारी सर्वस्व (प्रेस में)		ओंकार उपासना	12.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
शुद्ध हनुमच्चरित	60.00	दादी पोती की बातें	10.00
विदुर नीति	40.00	क्या भूत होते हैं	10.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
चाणक्य नीति	40.00	महाभारत के कृष्ण	8.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
नित्य कर्म विधि	32.00	सच्चे गुच्छे	8.00
वेद प्रभा	30.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
शान्ति कथा	30.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	गायत्री गौरव	5.00
यज्ञमय जीवन	30.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
दो बहिनों की बातें	30.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
दो मित्रों की बातें	30.00	सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
चार मित्रों की बातें	20.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	20.00	जीजा साले की बातें	5.00
मील का पत्थर	20.00	भारत और मूर्ति पूजा (प्रेस में)	

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2017 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबाइल- 9759804182

Yogendra # 9927136600

स्वामी, प्र... क, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित